CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्या

सी० डब्ल्यू लैडबीटर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6.1

ब्रह्मविद्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्या

लेखक

सी० डब्ल्यू लैडबीटर

अनुवादक

श्यामसुन्दर लाल

PILGRIMS

पिलग्रिम्स पब्लिशिंग

◆ वाराणसी ◆

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्या

लेखक—सी० डब्ल्यू लैडबीटर
अनुवादक—श्यामसुन्दर लाल

प्रकाशक
पिलग्रिम्स पब्लिशिंग
पिलग्रिम्स बुक हाउस (वितरक भारत)
बी० 27/98-ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221010
टेलीफोन-(91-542) 2314060
फैक्स-(91-542) 2312456
email-pilgrims@satyam.net.in
website-www.pilgrimsbooks.com

पूर्व प्रकाशित—सन् 1926 ई०
कॉपीराइट © सन् 2007 पिलग्रिम्स पब्लिशिंग

सम्पादन—गोपाल ठाकुर
आवरण—आशा मिश्र
अक्षर संयोजन—सुरेश जायसवाल

ISBN—81-7769-487-1

इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन, किसी भी प्रकार का आंशिक या पूर्ण प्रकाशन, इलेक्ट्रॉनिक प्रयोग, छायाचित्र का उपयोग आदि, विशेषज्ञ की समीक्षा के अलावा, प्रकाशक की अनुमति के बिना कानून का उल्लंघन है।

मुद्रक—पिलग्रिम प्रेस प्रा० लि०, लालपुर, वाराणसी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

पृष्ठ

दो शब्द vii

क्रम

१. ब्रह्मविद्या क्या है? १

२. ब्रह्म से मनुष्य तक १०

३. सूर्य जगत् की रचना २०

४. प्राण का विकास ३२

५. मनुष्य की बनावट ४६

६. मौत के बाद ७१

७. पुनर्जन्म ११०

८. जीवन का उद्देश्य १२३

९. युगों का वृत्तांत १३७

१०. ब्रह्मविद्या का सुफल १५१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

ब्रह्म क्या है ? शक्ति क्या है ? प्रकृति क्या है ? मैं कौन तथा क्या हूं ? ...आदि अनेक प्रश्न प्राय: सभी व्यक्तियों के चेतन-अचेतन मस्तिष्क में हर-पल गुंजायमान रहता है। अपनी-अपनी बुद्धि, अपने- अपने अनुभव के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति इस यक्ष प्रश्न का उत्तर अपनी प्रतिभा, अपने अनुभव के अनुसार ढूंढ़ता रहता है तथा एक निश्चित धारणा सुनिश्चित करता है। लेकिन इस पेंचीदे प्रश्न का सर्वमान्य उत्तर निर्धारित करना असंभव तो नहीं, सम्भव भी नहीं है। लेकिन यह भी अकाट्य सत्य है कि हर कठिन, जटिल या असम्भव प्रश्न का उत्तर सम्भव है। यहां एक वैज्ञानिक कथन का उल्लेख आवश्यक है—हाथ ऐंठ ऐंठ कर प्रकृति को अपना रहस्य बताने के लिये बाध्य करना आवश्यक है... और आज अनवरत वैज्ञानिक अनुसंधान के कारण प्रकृति अपना रहस्य बताने के लिये बाध्य है।

ब्रह्मविद्या में इसी जटिल प्रश्न के सर्वमान्य उत्तर के निर्धारण का प्रयास किया गया है। स्पष्ट धारणा के तहत इस तथ्य की व्याख्या की गई है कि सूर्य-जगत् में जो आत्मायें एवं पंचभूत के शरीर विद्यमान है उसके विकास-क्रम का अन्तिम बिन्दु ही ब्रह्मविद्या की पूर्णता है। इसके अलावा ब्रह्मविद्या में इस तथ्य की स्पष्ट व्याख्या की गई है कि जन्म से मृत्यु के क्रम में जीवन-गति का सार्वभौम उद्देश्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है कि वह पुन: उसी अज्ञात सृष्टि में समाहित हो जाये, जहां के जिस–जिस अणुओं के संयुक्त संयोजन से मानव जीवन का निर्माण एवं काल–गति का निर्धारण हुआ है। ब्रह्मविद्या स्पष्ट रूप से हमें निर्देशित करती है कि सूर्य जगत् एक कुशल रचना–यंत्र है। हमारा शरीर भी इस रचना यंत्र की एक लघु इकाई है, जो पंचभूत–जल, पृथ्वी, हवा, अग्नि एवं आकाश अर्थात् शून्य से निर्मित है और इसका एक स्वतंत्र स्वरूप है। फिर भी यह सूर्य जगत् अर्थात् प्रकृति से भिन्न नहीं है। फलत: भूत, भविष्य और वर्तमान काल के परिवर्तन एवं विकासशील गति की व्याख्या करने में ब्रह्मविद्या सक्षम है। वर्तमान की व्याख्या इस आधार पर प्रमाणित किया गया है कि शरीर स्वयं आत्मा है और मनुष्य का एक नहीं, अनेक शरीर है जो अलग–अलग लोक में उसके लिये अलग–अलग वाहन, औजार का काम देता है। साथ ही इन लोकों का स्थान भिन्न–भिन्न नहीं, बल्कि एक है तथा हमारे आस–पास ही है और उसे अनवरत् खोज, शोध से प्राप्त किया जा सकता है।

ब्रह्मविद्या से हमें यह भी ज्ञात होता है कि हमने कितना और कैसा विकास किया। साथ ही भूतकाल में अपनी क्या स्थिति थी। अब रहा सवाल भविष्य का तो ब्रह्मविद्या इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि वर्तमान ही भविष्य के चमकदार या मद्धिम स्थिति की नींव है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविद्या विज्ञानवाद का सशक्त प्रमाण है तो धर्मशास्त्र का अकाट्य तथ्य भी। धर्मशात्र के रूप में सदाचार पर बल प्रदान किया गया है, जो अनुभवगम्य ज्ञान है। विज्ञानवाद के रूप में ब्रह्मविद्या जीवन के सभी पक्षों पर संतुलन का पक्षधर है। ब्रह्मविद्या एक रूप में पदार्थ विद्या भी है। जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है—सदैव जीवन की खोज की ओर अग्रसर रहना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्या से ज्ञात होता है कि आत्मा अमर है और वह मनुष्य के अंदर और बाहर सदैव विद्यमान है तथा उसके किरणों के तेज का विस्तार एवं प्रभाव असीमित है। इसके अतिरिक्त दो बातें और ज्ञात होती है कि वह शक्ति, जो जीवन का मुख्य कारण है, वह सदैव हितकारी है। इस शक्ति को देखना, सुनना या सूंघना असम्भव है। परन्तु ब्रह्मविद्या की प्रक्रिया से इसका बोध सम्भव है। दूसरा तथ्य है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति या दुःख-सुख का स्वयं जिम्मेदार है तथा वह अपना न्याय स्वयं कर सकता है अर्थात् ब्रह्मविद्या से मनुष्य को शाश्वत सत्य का ज्ञान हो जाता है।

ब्रह्मविद्या पुस्तक में मनुष्य के इस जिज्ञासा की प्राप्ति के लिये राह दिखाया गया है कि सत्य क्या है, ब्रह्म क्या है, मनुष्य क्या है आदि। लेखक सी० डब्ल्यू बीटर इंग्लैण्ड के निवासी होने के बाद भी सत्य की खोज में भारत आये और अपनी सतत् खोज से ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त कर स्वयं को तो उपकृत किया ही, अन्य मनुष्यों के सतत् विकास के लिये भी ब्रह्मविद्या पुस्तक लिखे, हालांकि इस पुस्तक में अंकित पंक्तियों के तथ्य एवं भाव नया नहीं है।

भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनि द्वारा सृजित चारों वेद, अठारह पुराण और १०८ उपनिषद्, श्रीमद्भागवत गीता, पातजंलि योग आदि में मनुष्य, आत्मा, विकास आदि पर हजारों वर्ष पूर्व ही प्रकाश डाला जा चुका है। फिर भी श्री बीटर द्वारा जनहित में किया गया यह प्रयास निःसन्देह प्रशंसनीय एवं पालनीय है।

गोपाल ठाकुर
सम्पादक
सन् २००७ ई०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. ब्रह्मविद्या क्या है ?

अनेक शास्त्रों में एक शास्त्र ऐसा है जिसे आजकल के शिक्षित लोग भूल गये हैं। ब्रह्मविद्या के बारे में हम बहुधा यह कहा करते हैं कि यह कोई अलग मत नहीं है, किन्तु सब मत-मतान्तरों का एक सा आधार है। यह तो है ही, परन्तु दूसरी दृष्टि से देखा जाये तो हम निःसन्देह कह सकते हैं कि वह एक तरह से विज्ञानशास्त्र, धर्मशास्त्र और पदार्थ विद्या तीनों है। विज्ञान शास्त्र इस तरह है कि हमारे सूर्य जगत् में जो आत्मायें और शरीर हैं, उनके विकासक्रम की शैली इसमें भलीभांति समझाई जाती है। वह धर्म शास्त्र इस तरह है कि पहले विज्ञान शास्त्र के विभाग में क्रमोन्नति का साधारण शैली बताकर यह भी बताता है कि उस क्रम को थोड़े ही समय में कैसे पूरा करें, जिससे हम अपने लक्ष्य की ओर सीधे पहुंचने का अपने आप प्रयत्न कर सकें। ब्रह्मविद्या पदार्थ विद्या इसलिये है कि वह इन दोनों विभागों की बातों को मानने में किसी धर्म पुस्तक का आश्रय नहीं लेता, किन्तु उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण की अर्थात् आंखों देखी बताती है। परन्तु यह कहती है कि वे अभ्यास और निर्णय से प्रत्यक्ष हो सकती है। ब्रह्मविद्या यह बताती है कि मनुष्य को मूढ़ विश्वास करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मनुष्य में छिपी हुई ऐसी शक्तियां हैं जिसे उभाड़ा जा सकता है और जिनके उभाड़ने से मनुष्य अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप देखने और परीक्षा करने के योग्य हो सकता है और इस बात को करने में वह यह भी बताती है कि इन शक्तियों का ही फल है अर्थात् जो बातें इसमें सिखाई जाती हैं, वे प्राचीन काल में ऐसी उन्नत की हुई शक्तियों से प्रत्यक्ष सिद्ध हुई हैं।

विज्ञान शास्त्र के रूप में ब्रह्मविद्या हमें यह बताता है कि सूर्य जगत् एक बहुत चतुराई से रचा हुआ यंत्र है या यों कहिये कि वह एक विशाल जीवन-शक्ति का विकास है, जिसका मनुष्यमात्र केवल एक छोटा अंश है, परन्तु हमारा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये ब्रह्मविद्या में मनुष्यजाति का भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल का पूरा वृत्तांत बताया जाता है।

मनुष्य के वर्तमान के बारे में यह दिखाया जाता है कि यदि उन्नत शक्तियों (योगसिद्धियों) से देखा जाये तो मनुष्य वास्तव में क्या है। यह कहावत प्रचलित है कि मनुष्य की आत्मा होती है, परन्तु ब्रह्मविद्या प्रत्यक्ष प्रमाण से इस कहावत को उलट देती है और ऐसा बताती है कि मनुष्य स्वयं आत्मा है और उसका शरीर होता है, सच तो यह है कि उसके एक ही नहीं, कई शरीर होते हैं जो अलग-अलग लोक में उसके वाहन या सवारी और औजार का काम देते हैं। इन लोकों के स्थान अलग-अलग नहीं हैं। वे सब इसी स्थान और इसी समय में हमारे आस-पास हैं और ऐसे हैं जिनकी खोज-बीन हो सकती है। ये लोक स्थूल प्रकृति (आधिभौतिक सृष्टि) के विभाग हैं और ये विभाग परमाणुओं के छीद्र या घनेपन के विचार से होते हैं, जैसा आगे ब्योरेवार वर्णन किया जायेगा। मनुष्य इन लोकों में से कईयों में रहता है, किन्तु साधारण रीति से उसे बोध केवल सबसे नीचे के लोक (सबसे घना लोक) का होता है, परन्तु कभी-कभी उसे स्वप्न और मूर्छा में किसी दूसरे लोक की भी झलक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखायी पड़ जाती है। मौत सबसे नीचे अर्थात् स्थूल लोक की सामग्री से बने हुए शरीर को उतार फेंकता है, परन्तु इससे ऊंचे लोक में आत्मा या असली मनुष्य में कोई अंतर नहीं होता है, जैसे ऊपर से अपना वस्त्र उतार डालने से हमारे स्थूल शरीर में अंतर नहीं आता। ये सब बातें कपोल कल्पित नहीं बल्कि तथ्यपरक है।

ब्रह्मविद्या मनुष्य के पिछले इतिहास की भी बहुत कुछ बातें बताता है अर्थात् क्रम-क्रम से उन्नति करते हुए वह अपनी वर्तमान अवस्था तक किस किस प्रकार पहुंचा है। यह पिछला वृत्तान्त भी प्रत्यक्ष देखकर बताया गया है, क्योंकि जो कुछ होता है उसकी नियति अटल है, मानो वह विधाता की स्मृति है। अगर कोई इस लेख को जाँचे तो पिछली अवस्थाओं के चित्र उसकी आंखों के सामने ऐसे घूमने लगते हैं मानो वे इसी क्षण सचमुच हो रहे हों। इस प्रकार मनुष्य के पिछले वृत्तांत की जांच करने से हमें यह भी निश्चय हुआ है कि मनुष्य की उत्पत्ति ईश्वर से है और उसकी उन्नति धीरे-धीरे बहुत प्राचीन काल से हो रही है और यह उन्नति भी दो प्रकार की है—एक प्राण अर्थात् भीतर के जीव की और दूसरी बाहर के शरीर की। इससे यह भी निश्चय होता है कि मनुष्य के जीवात्मा की आयु अत्यन्त बड़ी है, जिसको हम साधारण बोली में मनुष्य का एक जन्म या जिन्दगी कहते हैं। सच पूछे तो उसके वास्तविक जीवन का केवल एक दिन है। वह इस तरह के कितने ही दिन व्यतीत कर चुका है और अब भी बहुत से ऐसे दिन उसे व्यतीत करना है और यदि हम उस वास्तविक जीवन और उसके प्रयोजन को समझना चाहें तो हमको चाहिये कि केवल इस एक दिन की ज़िन्दगी के जीवन का विचार न करें जो जन्म से आरम्भ होता है, और मरने पर समाप्त होता है। किन्तु उन दिनों अर्थात् जन्मांतर का भी विचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना चाहिये, जो बीत चुके हैं और जो अब आनेवाले हैं। जो जन्मांतर अब आने वाले हैं उनका भी बहुत कुछ वर्णन करना है और इसमें भी बहुत कुछ ब्योरेवार वृत्तांत मिलता है। ऐसा वृत्तांत पहले तो उन मनुष्यों से मिलता है जो हमसे उन्नति के मार्ग पर बहुत आगे हैं। इसलिये उनको उसका प्रत्यक्ष अनुभव है, दूसरे उस अनुमान से भी पिछली उन्नति की पंक्तियों की स्पष्टगति पर बांधा गया है। हमारे इस युग का जो लक्ष्य है, वह हमसे अब भी बहुत ऊंचा है। परन्तु दिखायी पड़ने लगा है। परन्तु ऐसा ज़ान पड़ता है कि कालांतर में उस लक्ष्य के मिल जाने पर भी आगे भी हर एक उत्साही के लिये अनंत उन्नति का राह बना रहेगा।

ब्रह्मविद्या से सबसे बड़ा लाभ यह है कि जो ज्ञान इससे प्राप्त होता है उससे हमारी बहुत सी शंकायें मिट जाती हैं, हमारे बहुत से प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है और संसार में, जो ऊपरी निगाह से देखने में अन्याय की बातें नजर आती हैं, उनका समाधान हो जाता है और जो बातें नियमरहित और गड़बड़ दिखायी देती थीं, वे इसके ज्ञान से बोध होने लगता है। यों ब्रह्मविद्या कुछ बातें ऐसी भी बताता है जो उन शक्तियों (सिद्धियों) से देखी गई है, जो संसार के साधारण मनुष्यों के ज्ञान से बाहर है, तब भी अगर वे थोड़ी देर के लिये मान लें कि ये सही हैं तो उनको यह बहुत जल्दी निश्चय हो जायेगा कि ये अवश्य सही हैं, क्योंकि इस कल्पना के सिवाय और कोई ऐसी युक्ति नहीं है जिससे इस जगत्‌रूपी नाटक का ऐसा समाधान हो सके। जिसमें कोई विरोध न आये और जो बुद्धि के अनुकूल हो।

पश्चिमी देशों में जो बड़ी-बड़ी नई बातें ब्रह्मविद्या ने प्रकट की हैं, उनमें मुख्य दो हैं—एक तो यह कि पहुंचे हुए मनुष्य (ऋषि मुनि) साक्षात् विद्यमान हैं और दूसरी यह कि यह सम्भव है कि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिल भी सकते हैं और उनसे शिक्षा भी प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार एक और नई बात जो ब्रह्मविद्या ने बताया है; वह यह है कि इस जगत् का प्रवाह अंधाधुंध और प्रबंधरहित नहीं है, किन्तु उसके गति का सन्तुलन उत्तम और सुरचित है, जो ऋषिसंघ (समाज) के हाथ में है। इसलिये यह तो कभी नहीं हो सकता कि इस जगत् के नन्हें से नन्हें अंश में भी अंत में कोई न्यूनता रह सके। अगर इस ऋषिसंघ के निबंध की झलक भी किसी को दिखायी दे जाये तो उसके मन में निःसंदेह ऐसी इच्छा उत्पन्न होगी कि मैं भी इसके साथ काम करने लग जाऊं और इसके साथ रहकर कोई सेवा चाहे कैसी ही क्यों न हो, करने लग जाऊं और कालांतर में कभी न कभी उस ऋषिसंघ की बाहरी कक्षाओं में भरती हो सकूं।

अब हम ब्रह्मविद्या के धर्मशास्त्र का वर्णन करते हैं। जो मनुष्य इन बातों को समझने लगते हैं, वे क्रमोन्नति की ऐसी साधारण गति से जो कल्पों तक मन्द-मन्द चलनेवाली है, उकता जाते हैं और उन्हें यह लालसा उत्पन्न होने लगती है कि वे जल्दी ही उपयोगी बन जायें। इसलिये वे उत्साही होकर उस कठिन पगडंडी के मार्ग का उपदेश ले लेते हैं। इस उन्नति के लिये जितना श्रम होना है, वह टल नहीं सकता है, जैसे कि अगर कुछ बोझ पहाड़ पर ले जाना है, तो उसको चाहे कोई कठिन पगडंडी या धीरे-धीरे नरम चढ़ाव की सड़क से जाये। दोनों तरीके में एक समान बल व्यय होगा। परन्तु ऐसा हो अवश्य सकता है, क्योंकि ऐसा पहले हो चुका है और जिन्होंने ऐसा किया है वे सब यह कहते हैं कि इसमें श्रम की तुलना में लाभ बहुत अधिक है। ऐसा करने से अनेक शरीरों की न्यूनता धीरे-धीरे दूर हो जाती है और छुटकारा पाकर प्राणीमात्र की उन्नति के इस बड़े प्रबन्ध में मनुष्य बुद्धिपूर्वक सहायता देने लगता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मशास्त्र के रूप में भी ब्रह्मविद्या अपने भक्तों को सदाचार के नियम बताती है। इन नियमों का आधार अनुभव सिद्ध साधारण समझ पर है, न कि किसी प्राचीन वचन पर। इन नियमों के पालन करने में जो भाव ब्रह्मविद्या के जिज्ञासुओं का होता है, वह स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन करने के भाव से प्राप्त होता हैं, न कि मत सम्बन्धी वचनों या आज्ञाओं के पालन करने के भाव से। अगर हम चाहें तो यह कह सकते हैं कि यह बात या वह बात दैवी इच्छा के अनुकूल हैं, क्योंकि दैवी इच्छा की सूचना उन नियमों में है, जिनको हम प्रकृति के नियम मानते हैं। यह दैवी इच्छा सब वस्तुओं को बुद्धिमानी से रचती है। इसलिये प्रकृति के नियमों को तोड़ना मानो विश्व की शांतगति में विघ्न डालना है, या थोड़ी देर के लिये सर्ग के एक नन्हें अंश को रोक रखना है और इस रीति से अपने ऊपर और दूसरों पर कष्ट डालना है। बुद्धिमान् लोग जो नियमों के तोड़ने से बचते हैं उसका हेतु यही है, न यह कि किसी कोपायमान देवता के मन-कल्पित क्रोध से बचें।

परन्तु एक रीति से यदि ब्रह्मविद्या का धर्म के रूप में विचार करें, तो इसमें और उस मत में जिसको कि साधारण बोली में पश्चिम देशवासी धर्म कहते हैं—इसमें दो बड़ी बातों का भेद है। पहली तो यह कि ब्रह्मविद्या यह नहीं कहती है कि उसके ऊपर चलने वालों को अमुक अमुक बातों को मूढ़ विश्वास करके मानना ही चाहिये, यही नहीं वरन् इसमें ऐसे विश्वास शब्द की चर्चा तक नहीं है। गुप्त विद्या का अभ्यासी किसी बात को या तो निश्चित जान लेता है या जहां तक निश्चित न हो उस मत को सन्देह भरा हुआ रखता है, परन्तु वह मूढ़ विश्वास नहीं करता। इसमें सन्देह नहीं कि अभ्यासी पहले पहल अपने आप निश्चय नहीं कर सकते हैं, इसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मविद्या उनसे यह कहती है कि जिन बातों की तलाश हो चुकी है, उनके सिद्धान्तों को संकेत की तरह मान लें अर्थात् थोड़ी देर के लिये सच्चा मानकर उनको काम में लाने में लग जायें जब तक कि वे उनको अपने आप साक्षात न कर सकें।

दूसरे कोई मनुष्य किसी धर्म में क्यों न हो, ब्रह्मविद्या उसको उससे छुड़ाने की चेष्टा नहीं करती। ब्रह्मविद्या यह कहती है कि उसे उसके मत में जो शंकायें हों, उनका समाधान कर देती हैं और इससे उसको अपने ही मत में पहले से अधिकतर गूढ़ आशय दिखायी देने लगते हैं। ब्रह्मविद्या के प्रताप से अब वह अपने मत को अधिक समझने और उस पर अच्छी रीति से चलने लगता है और बहुधा तो ऐसा होता है कि उसको अपने मत में प्रायः गया हुआ विश्वास पीछे आ जाता है और वह भी बुद्धियुक्त और ऊंची कक्षा का होता है।

ब्रह्मविद्या का एक रूप पदार्थ विद्या का भी है, वह वास्तव में प्राणविद्या अर्थात् अध्यात्म विद्या ही है। वह हर एक बात में पदार्थ विद्या के ढंग पर चलती है अर्थात् बार बार श्रमपूर्वक खोज करके जो बातें मिलें, उन्हें इकट्ठी करती है और उनसे सिद्धान्त निकालती है। इस प्रकार ब्रह्मविद्या ने नरक स्वर्गादि लोकान्तरों की छानबीन की है और यह भी निश्चय किया है कि जीते जी और मरने पर मनुष्य के जीव की क्या क्या दशा होती है। यहां यह भी बताना जरूरी है कि ये बातें जो ब्रह्मविद्यावाले बताते हैं कि मनकल्पित या मूढ़-विश्वास की नहीं है, किन्तु बार-बार और प्रत्यक्ष देखी हुई है। इसकी जांच करनेवालों ने साधारण पदार्थ विद्या की बातों की भी कुछ कुछ तलाश की है, जैसा कि उस पुस्तक के पढ़ने से जान पड़ेगा जो कि रसायन रहस्य के नाम से रसायन विद्या के गूढ़ विषयों पर हाल में प्रकाशित हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मविद्या में विज्ञानशास्त्र, धर्मशास्त्र और पदार्थविद्या तीनों के कुछ कुछ अंग आ गये हैं। परन्तु ये प्रश्न हो सकता है कि दुःखमय जगत के लिये यह क्या मंगल समाचार लाया है ? ...और इसकी तलाश से कौन कौन सी बड़ी बातें निकली हैं ? ...और मनुष्य जाति को यह कौन सी बड़ी बातें बताता है ?

इनके उत्तर में तीन बड़ी बातें बताई गई हैं जो कि नित्य हैं और जिनका अभाव नहीं हो सकता है, किन्तु शब्द के अभाव से वे कहने में नहीं आ सकता है।

(अ) मनुष्य की आत्मा अमर है और उसका भविष्य ऐसा है कि इसकी वृद्धि और तेज की सीमा असीमित है।

(इ) वह शक्ति जो हमारे जीवन का कारण है। हमारे भीतर और हमारे बाहर रहती है। वह अमर है और निरंतर हितकारी है। वह सुनने देखने या सूंघने में नहीं आता है परन्तु यदि कोई चाहे तो वह इसका अनुभव कर सकता है।

(उ) हर मनुष्य अपने लिये आप ही अकेला न्याय करने वाला, वही स्वयं अपने आपको शुभ या अशुभ करने वाला है और वही अपनी जीवन की व्यवस्था और अपने पारितोषिक या दण्ड का निर्णय करनेवाला है।

ये सिद्धान्त की बातें हैं तो गम्भीर, परन्तु साधारण मनुष्य की समझ में भी सुगमता से आ सकती हैं। साधारण बोली में थोड़े से शब्दों में इनका यह अर्थ है कि परमेश्वर भला है, मनुष्य अमर है और जैसा हम बोते हैं, वैसा ही हमें मिलता है।

जगत् की बातों का नियमित प्रबन्ध है, यह प्रबन्ध बुद्धिमानों के नियंत्रण में है और इसके नियम अपरिंवर्तनीय है। इस प्रबन्ध में मनुष्य भी एक ठौर पर हैं और उसका जीवन इन्हीं नियमों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधीन है। अगर वह इन नियमों को समझ लेगा और उनके साथ-साथ चलेगा तो वह जल्दी उन्नति करेगा और सुखी होगा। अगर वह इन नियमों को नहीं समझेगा या इन नियमों को जानकर या अनजाने में तोड़ डालेगा तो उसकी वृद्धि में कमी होगी और उसे दुःख होगा। ये कल्पनाएँ नहीं हैं, किन्तु सिद्ध की हुई सच्ची बातें हैं। जिस किसी को शंका हो उसे चाहिये कि वह पढ़ता जाये और पढ़ते-पढ़ते उसका समाधान हो जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. ब्रह्म से मनुष्य तक

निर्गुण, अनन्त और सर्वव्यापक ब्रह्म की हम अपनी वर्तमान अवस्था में कोई बात नहीं जान सकते, सिवाय इसके कि उस ब्रह्म की सत्ता है। जो कुछ कहने में आ सकता है, वह बिना सीमा के नहीं हो सकता और इसलिये वह ब्रह्म पर ठीक नहीं लग सकता।

उस ब्रह्म में असंख्य विश्व हैं, एक एक विश्व में अनगिनत सूर्यजगत् हैं। एक एक सूर्यजगत् एक बड़े पुरुष का प्रकाश है? जिसको शब्दब्रह्म या सूर्यदेव कहते हैं। साधारण बोली में यों कहेंगे कि वह इस सूर्यजगत का ईश्वर है। वह इस जगत् में व्यापक है और इसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो ईश्वर न हो। दृश्य वस्तुओं में ईश्वर के आभास को सूर्यजगत् कहते हैं। वह ईश्वर इस जगत् के ऊपर और बाहर भी विद्यमान है। वह अपने बराबर वालों में विशाल जीवन धारण किये हुए रहता है। श्रीमद्‌भागवत् गीता के अध्याय १० के श्लोक ४२ में लिखा है कि—**विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नं एकांशेन स्थितो जगत्।**

अर्थात् इस सम्पूर्ण जगत् में मैं (परमेश्वर) एक अंश से व्यापक हूं। फिर भी शेष रहता हूं।

इस जगत् के उपरान्त जो उसका जीवन है, उसकी कोई बात हम नहीं जान सकते हैं। परन्तु उसके प्राण का जो अंश इस जगत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को चैतन्य कर रहा है, उसके नीचे की कक्षाओं के आभास का कुछ वृत्तान्त हमें ज्ञात हो सकता है। हम उसे नहीं देख सकते, परन्तु हम उसकी शक्ति को काम करते देख सकते हैं। दिव्यदृष्टि से इतना प्रबल प्रमाण मिलता है कि कोई भी दिव्यदर्शी नास्तिक अर्थात् अनीश्वरवादी नहीं समझ सकता।

ईश्वर ने अपने में से इस विशाल जगत को उत्पन्न किया है। हम जो इस जगत् में है, उसके प्राण के खिलनेवाले अंश अथवा उसकी दैवी अग्नि की चिंगारियां हैं अर्थात् ईश्वर से ही हम निकले हैं और उसी में पुनः समाहित हो जायेंगे।

बहुधा यह प्रश्न पूछे जाते हैं कि ईश्वर ने ऐसा क्यों किया, उसने इस सारे जगत् को अपने आप में से क्यों निकाला और उसने हमको इस संसार की विपत्तियों का सामना करने को क्यों भेजा है। यह हम नहीं जान सकते और न यह प्रश्न साध्य है। बस, बात तो यह है कि हम यह हैं और हमको सामर्थ्यभर पुरुषार्थ करना है। तथापि बहुत से वैज्ञानिकों ने इस विषय पर विचार किया है और कई बातें सुझाई हैं। मेरी समझ में इन सबमें जो सुन्दर से सुन्दर है, वह एक आस्तिक वैज्ञानिक की है वह यह है।

ईश्वर प्रेम है, परन्तु प्रेम अपने आप पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक ऐसे लोग न हों जिन पर प्रेम बरसाया जा सके और जो इसका बदला दे सके। इसलिये ईश्वर ने अपने में से कुछ चेतन का अंश जड़ में डाला है और अपने प्रकाश की सीमा बांध दी है, ताकि इस साधारण और धीमी क्रमोन्नति की शैली में होकर हम उत्पन्न हो जायें अर्थात् मनुष्य बन जायें, और हमको भी उसकी इच्छानुसार उन्नति करना है जब तक कि हम ईश्वर के कक्ष तक न पहुंच जायें और तब वही ईश्वर का प्रेम पूर्ण हो जायेगा, क्योंकि तब वह जो उसको पूरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझने लगेंगे और उसका बदला देंगे और इस तरह उसके महत् प्रबन्ध का प्रयोजन सिद्ध होगा और उसकी इच्छा पूर्ण होगी।

ब्रह्म चेतन कितना अधिक ऊंचाई पर रहता है, यह हम नहीं जानते और न हम यह जान सकते हैं कि उस ऊंची कक्षा पर उसके चेतन की सच्ची व्यवस्था क्या है। परंतु जब वह अपने को ऐसी व्यवस्थाओं में डालता है जो हमारी पहुंच में है तब उसकी अनुभूति तीन प्रकार से होती है और इसीलिये सभी धर्म दर्शन में उसको त्रिमूर्ति के रूप में माना है, तीन रूप परन्तु मूल में एक, अर्थात् तीन शरीर, पर एक ईश्वर जो अपने को उन तीनों रूपों में दिखा रहा है। नीचे से अगर उनकी ओर ऊपर को देखें तो वे हमको तीन जान पड़ते हैं, क्योंकि उनके काम अलग-अलग हैं, परन्तु ईश्वर को वे एक ही दिखायी देते हैं। क्योंकि वह जानता है कि ये तीनों मेरे ही कार्य अंश हैं।

ये तीनों रूप हमारे सूर्यजगत की क्रमोन्नति में काम आते हैं और इन्हीं तीनों रूपों का मनुष्य की क्रमोन्नति में भी सम्बन्ध है। यह उन्नति ही ईश्वर का अभिप्राय है और सृष्टिक्रम इसका यन्त्र है।

सूर्यदेव के नीचे उसके सात मंत्री हैं, जिनको कभी-कभी प्रजापति कहते हैं और जो एक गुप्त रीति से उसके अंश भी हैं। यदि हम अपनी शारीरिक बनावट से उपमा दें तो इन लोकपालों का सम्बन्ध ईश्वर से ऐसा है, जैसा स्नायुजाल या स्नायुकेंद्रों का मस्तिष्क से। सृष्टि का सब विकास, जो ईश्वर से निकलता है, इन सातों में से किसी न किसी एक में होकर आता है।

इनके नीचे बड़े-बड़े समूह या कक्षायें अध्यात्म जीवों की हैं, जिन्हें हम फरिश्ते या देवता कहते हैं। इस अद्‌भुत जग-सृष्टि के अलग-अलग भागों में, जो-जो काम ये करते हैं, वे अभी सब हमारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानने में नहीं आये हैं, परन्तु हम देखते हैं कि उनमें से कोई देवता इस सृष्टि के ढाँचे को बनाने और उसमें जीव प्रकाश करने से अभिन्न सम्बन्ध रखते हैं।

हमारे यहां लोक में एक बड़ा अधिकारी है जो सूर्यदेव का प्रतिनिधि है और हमारी इस पृथ्वी पर जो उन्नति होती है उस पर उसका पूरा अधिकार है। हम उसको इस लोक का सच्चा राजा मान सकते हैं और उसके नीचे मंत्री अलग-अलग विभागों के कार्यकर्त्ता हैं। इन विभागों में से एक वह है जिसका सम्बन्ध अलग-अलग जाति के मनुष्यों की क्रमोन्नति से है, यहां तक कि हर एक बड़ी जाति के लिये एक मुखिया है जो उस जाति की नींव डालता है और सब दूसरी जातियों से उसे विशिष्ट बनाता है और उसके विकास का नियंत्रण करता है। एक दूसरा विभाग धर्म और शिक्षा का है और इसी में से प्राचीन समय के बड़े-बड़े शिक्षक आये हैं और इसी में से सब मत निकले हैं। इस विभाग का मुख्य अधिकारी जब कभी समझता है कि नये मत की आवश्यकता है, तब एक नया मत स्थापित करने को या तो स्वयं आता है या अपने शिष्यों में से किसी एक को भेज देता है।

इसलिये सब मतों के आदिरूप (आरम्भ) में सत्य के किसी विशेष अंग का वर्णन हुआ है, परन्तु सत्य का मर्म सदा एक ही रहा है। मत-मतांतरों के आदिरूपों में भेद इसलिये हुआ है कि जिन जातियों के लिये उनकी उत्पत्ति हुई थी, उनमें परस्पर भेद था। अनेक मनुष्य जातियों की सामाजिक व्यवस्था और उन्नति के तारतम्य से इस बात की आवश्यकता हुई कि यह एक ही सत्य अलग-अलग रूपों में दिखाया जाये। परन्तु सत्य के भीतर का अंग सदा एक ही रहा है और वह स्रोत, जहां से यह सत्य निकला है, एक ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यपि उनके बाहरी रूपों में भेद ही नहीं, किन्तु विरोध भी दिखायी पड़ता है। यह मूर्खता है कि मनुष्य इस बात पर विवाद करें कि कोई एक शिक्षक सर्वदा ऋषियों के बड़े मंडल के भेजे होते हैं और शिक्षा बड़ी बातों, नीति और सदाचार के सिद्धांतों में सदा एक ही रही है।

इस जगत में ज्ञान की बातों का एक संग्रह ऐसा है जो इन सब मत–मतांतरों की जड़ है और जो सृष्टि की बातें अभी तक मनुष्य के जानने में आ चुकी हैं, वे सब इसमें मिलती हैं। बाहरी लोक में मनुष्य अपने अज्ञान के कारण इन बातों पर सदा झगड़ा और विवाद पैदा करते हैं कि क्या परमेश्वर है या नहीं। क्या मनुष्य मरने के पीछे भी जीवित रहता है या नही ? क्या वह विशेष उन्नति कर सकता है या नहीं ? और विश्व से उसका क्या सम्बन्ध है। तर्कशक्ति के उत्पन्न होते ही मनुष्य के मन में ये प्रश्न सदा बने रहते हैं। ये प्रश्न प्रायः ऐसे समझे जाते हैं कि इनका उत्तर नहीं दिया जा सकता। परन्तु ऐसा नहीं है, इनका उत्तर हर कोई दे सकता है, यदि वह इन प्रश्नों के उत्तर खोजने की यथोचित चेष्टा करे। इन बातों का ज्ञान ऐसा है कि यह प्राप्त हो सके और हर किसी की चेष्टा से उसके प्राप्ति का वह पात्र हो सकता है।

मनुष्य की उन्नति की पहले की अवस्थाओं में ऋषि मण्डल के मुख्य अधिकारी बाहर से अर्थात् सूर्यजगत के अधिकतर उन्नत शुक्रादि लोकों से आते थे, परन्तु यों ही यहां मनुष्य यथोचित कक्षा के बल, बुद्धि की शिक्षा पा चुके होते हैं, तब ही इन पतों पर वे नियत हो जाते हैं। ऐसे अधिकार के योग्य होने के लिये मनुष्य को यह आवश्यकता होती है कि वह अपने आपको ऊंची कक्षा तक पहुंचाकर ऋषि बन जाये अर्थात् ऐसी शक्ति और बुद्धिवाला पुण्यात्मा बन जाये कि वह अन्य मनुष्यों से शिखर की तरह ऊंचा हो जाये,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि वह मनुष्य की साधारण उन्नति की चोटी तक पहुंच चुका है। उसने वह पद प्राप्त कर लिया है जो वर्तमान समय के लिये ईश्वर के यहां से नियत किया गया था। परन्तु उसकी उन्नति इस कक्षा से आगे भी ईश्वर की कक्षा पर पहुंचने तक जारी रहेगी।

बहुत से मनुष्यों ने ऋषियों का पद प्राप्त कर लिया है, ये मनुष्य एक देशवासी नहीं हैं, किन्तु जगत् के सब मुख्य जातियों के हैं। ये विरले जीव हैं, जिन्होंने दृढ़ साहस से माया के वेगों को जीत लिया है और सृष्टि के भीतरी भेदों को जान लिया है और ऐसा करके ऋषि कहलाने की योग्यता प्राप्त कर ली है। उनमें कई दर्जे और कई काम के विभाग हैं, परन्तु सदा उनमें से कुछ ऋषिमण्डल के सभासद बनकर हमारी पृथ्वी के सम्बन्ध में लगे रहते हैं। क्योंकि हमारे जगत की बातों का प्रबन्ध और मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति इसी ऋषि मण्डल के हाथ में रहती है।

इस प्रतिष्ठित समाज को बहुधा बड़ा श्वेत-मण्डल कहते हैं, परन्तु इसके सभासद किसी एक स्थान पर सबके सब इकट्ठे नहीं रहते हैं। उनमें से हर एक प्रायः संसार से अपने को अलग कर लेता है और इन सबको दूसरे के और अपने मंडल के प्रधान महर्षि के समाचार निरन्तर मिलते रहते हैं, परन्तु सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान उनको इतना अधिक है कि यह संसर्ग इनको दूर रहते हुए भी बना रहता है। प्रायः तो वे अपने अपने देशों ही में बने रहते हैं और वे लोग जो इनके पास रहते हैं, उनको उनकी शक्तियों का भ्रम भी नहीं होता। कोई मनुष्य जो चाहे इनका ध्यान अपनी ओर खींच सकता है, परन्तु यह जब हो सकता है कि वह इस कृपा का पात्र बने। यह शंका किसी को नहीं होनी चाहिये कि उसके सत्कर्म महात्माओं की दृष्टि में आने से रह जायेंगे। ऐसा दृष्टिदोष होना असम्भव है, क्योंकि जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य इस रीति की सेवा में लगता है वह मनुष्यमात्र में ऐसा प्रतिष्ठित दिखायी पड़ता है, जैसे अंधेरी रात में अग्नि की बड़ी ज्वाला। इन बड़े लोकोपकारक महात्माओं में से कोई-कोई ऐसे लोगों को अपने शिष्य बनाना स्वीकार कर लेते हैं कि जिन्होंने मनुष्य जाति की सेवा में अपने को समर्पण कर देने का प्रण कर लिया हो, ऐसे महात्मा ऋषि, गुरुदेव कहलाते हैं।

इन शिष्यों में से एक हेलेना पेट्रोवना ब्लैवाट्स्की थीं, एक उत्तम जीवात्मा! जो अनुमानतः सौ वर्ष पूर्व लोक में ज्ञान देने के लिये भेजी गई थीं। कर्नल हेब्री स्टील आलकट साहब के साथ इन्होंने इस ज्ञान के फैलाने को, जो उन्हें मिला था, ब्रह्म-विद्या-सभा की नींव डाली। जिन लोगों का पहले के दिनों में इनसे मेल हुआ, उनमें एक ए. पी. सिनेट साहब, पायोनियर समाचार पत्र के सम्पादक भी थे और इन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से तत्काल ही यह समझ लिया कि मैडम ब्लैवाट्स्की की शिक्षा बड़े गौरव और महत्व की है। यद्यपि मैडम साहिबा इससे पहले अध्यात्म रहस्य प्रकाश नामी पुस्तक लिख चुकी थीं, परन्तु उसकी ओर लोगों का ध्यान बहुत नहीं गया था और यह सिनेट साहब का ही काम था कि सबसे पहले यह शिक्षा पश्चिम देश के पढ़नेवालों को उनकी दो पुस्तकों से मिली। ये दो पुस्तकें गुप्त जगत् और बौध मत का मर्म है।

इन पुस्तकों से ही मुझे पहले इनके लेखक और फिर स्वयं मैडम ब्लैवाट्स्की से मिलने का अवसर मिला, उन दोनों से मैंने बहुत कुछ सीखा। जब मैंने मैडम ब्लैवाट्स्की से पूछा कि इससे अधिक कैसे सीखने में आ सकता है और जो मार्ग कि उन्होंने मुझे बताया था उस पर सच्ची उन्नति कैसे हो सकती है। उन्होंने मुझे कहा कि जिस तरह वे स्वयं शिष्यपने में स्वीकार कर ली गईं थी उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह यह सम्भव है कि गुरुदेव महात्मा और विद्यार्थियों को भी शिष्य बनाना स्वीकार कर लें, परन्तु कोई मनुष्य स्वीकार जब ही हो सकता है कि वह तत्परता और परोपकारी काम से अपनी योग्यता दिखा दें। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि इस पद पर पहुँचने के लिये मनुष्य को अपनी इरादे में पूरी दृढ़ता रखनी होती है। उन्होंने यह भी कहा कि दाम और राम (ईश्वर) या दीन और दुनियां दोनों की एक साथ सेवा करने में सफलता नहीं हो सकती। इन गुरुदेवों में से एक ने ऐसा कहा है कि परलोक सिद्ध होने के लिये शिष्य को चाहिये कि वह अपना लोक छोड़कर हमारे में आयें।

इसका अर्थ यह है कि शिष्य को यह चाहिये कि वह उन बहुत से संसारिक मनुष्यों को छोड़ दे, जो केवल धन और बल की लालसा रखनेवाले हैं और उन लोगों की छोटी सी टोली में मिल जायें, जिन्हें ऐसी वस्तुओं की चाह कुछ भी नहीं है। किन्तु जिनके जीवन का प्रयोजन ही यह है कि वे संसार की भलाई में निस्वार्थ लग जाये। मैडम ब्लैवाट्स्की ने हमें भलीभांति चेता दिया कि इस मार्ग पर चलना कठिन है और यह कि संसारी लोग हमारा भ्रम और ठट्ठा करेंगे और इस मार्ग में कठिनाई के बिना और किसी वस्तु की आशा नहीं की जा सकती और यह भी कहा कि यह तो निश्चय है कि सफलता होगी पर यह कोई नहीं पहले से कह सकता है कि इसमें कितना समय लगेगा। हममें से कोई कोई ने इन बातों को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया है और ऐसा कोई अवसर नहीं आया कि इससे हमें पछताना पड़ा हो।

कई वर्ष काम करने पर मुझे इन बड़े गुरुदेवों से मिलने का सन्मान प्राप्त हुआ। उनसे मैंने बहुत सी बातें सीखी हैं, जिनमें से एक यह है कि जो शिक्षाएं उन्होंने दी हैं, उनमें से बहुतों का मैं साक्षात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव कर लेता हूं। इसलिये इस विषय में जो कुछ मैं लिखता हूं वह मेरा जाना हुआ और अपने आप देखा हुआ है। इन शिक्षाओं में कोई कोई बातें ऐसी हैं जिनके साक्षात् करने में ऐसी शक्तियां चाहने पड़ती हैं कि जो मेरी गम से बहुत बाहर हैं, परन्तु इनके लिये केवल इतना मैं कह सकता हूं कि जो कुछ मैं अब जानता हूं कि उसमें और इनमें विरोध नहीं है और प्राय: ये बातें ऐसी हैं कि जो कुछ मैंने साक्षात् देख लिया है। उसके समाधान करने के लिये इनको मान लेना पड़ता है। ये बातें ब्रह्मविद्या के दूसरे और सब सिद्धान्तों के साथ मैं इन गुरुदेवों के वचन पर ही मानता हूं। तब से मैंने जो कुछ मुझे बताया गया था कि उसमें से और भी अधिक बातों का साक्षात् निर्णय कर लेना सीख लिया है और यह निश्चय हो गया है कि जो बातें मुझे बताई गईं थीं, हर एक पहलू से ठीक हैं। इसलिये ऐसी कल्पना करने में दोष नहीं है कि जब मैं जांच करने योग्य हो जाऊंगा, तब वे दूसरी बातें भी जिनकी मैं अभी तक साक्षात् जांच नहीं कर सका हूं ठीक निकलेंगी।

ब्रह्मविद्या के उत्साही अभिलाषी का यह प्रयोजन हुआ करता है कि उसे कोई गुरुदेव अपना शिष्य बना लें। इसके लिये दृढ़ उद्योग करना पड़ता है। ऐसे कोई न कोई लोग सदा रहे हैं कि जो ऐसे प्रयास करने को तत्पर थे और इसलिये सदा कोई न कोई लोग ज्ञानी बनते चले आये हैं। यह ज्ञान ऐसा परमोत्तम है कि जो कोई इसे पूरा प्राप्त कर लेता है, वह मनुष्य के पद से ऊंचा निकल जाता है और हमारे ज्ञान की सीमा से बाहर हो जाता है।

परन्तु इस ज्ञान की पाठशाला में कई कक्षाएं हैं और वे लोग जो अब भी सीख रहे हैं उनसे भी हम अगर चाहें तो बहुत कुछ सीख सकते हैं, क्योंकि मनुष्यमात्र क्रमोन्नति की निसैनी के किसी न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी डंडे पर खड़े हैं। जंगली मनुष्य उस निसैनी की तली पर हैं और हम सभ्य लोग उस पर थोड़ा बहुत चढ़ चुके हैं। परन्तु हम पीछे को मुड़कर नीचे के डंडों को देख सकते हैं, ऐसे ही यह भी हो सकता है कि हम ऊपर को आंख उठाकर अपने ऊपर बहुत से डंडे देख लें जिन पर कि हम अभी नहीं पहुंच पाये हैं। जैसे हमसे नीचे हर एक डंडे पर अब भी लोग खड़े हैं जिससे हमको दिखायी पड़ जाता है कि किस-किस स्तर से होकर मनुष्य ऊपर चढ़ा है, ठीक वैसे ही हमारे ऊपर भी हर एक डंडे पर मनुष्य खड़ है और इनको देखकर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि मनुष्य आगे किस प्रकार चढ़ेगा। यह निसैनी इतनी ऊंची गई है कि उसकी महिमा नहीं कही जा सकती है और हमें यह भी दिखायी पड़ता है कि इसकी हर एक पंक्ति पर मनुष्य हैं, इससे हमको अनुमान होता है कि हमारे लिये भी यह सम्भव है कि हम भी उस महिमा की ऊंचाई तक चढ़ जायें। वे महात्मा जो हमसे बहुत ऊंचे पर खड़े हैं और इतने ऊंचे हैं कि वे हमको अपने अद्भुत ज्ञान और बल से देवतातुल्य जान पड़ते हैं। वे हमें यह बताते हैं कि वे स्वयं भी, बहुत समय नहीं हुआ यहां ही खड़े थे जहां अब हम हैं और वे हमें यह भी बतलाते हैं कि हमारे और उनके बीच में कौन-कौन सी पंक्तियां हैं और हमको भी इन पंक्तियों पर चढ़ना पड़ेगा, अगर हम उन जैसे होना चाहें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. सूर्य जगत् की रचना

अगर यह मान लिया जाये कि विश्व का कभी आरम्भ हुआ, तो भी हम यह नहीं जान सकते कि आरम्भ कब हुआ। यदि हम पुराने से पुराने समय को भी देखें तो भी पुरुष और प्रकृति (जड़ और चेतन), प्राण और रूप इन विपरीत द्वन्द्वात्मक स्थिति प्रचंड अवस्था में पाया जाता है। हमें यह दिखायी पड़ता है कि द्रव्य अर्थात् जड़ पदार्थ की सामग्री का जो साधारण अर्थ किया जाता है, उसमें हेर-फेर करने की जरूरत है, क्योंकि साधारण बोली में जिनको बल और जड़ द्रव्य कहते हैं कि वे दोनों वास्तविकता में प्राण के भेद हैं, परन्तु क्रमोन्नति में ये हैं अलग-अलग अवस्थाओं में और असल द्रव्य (मूल प्रकृति) जो हर एक पदार्थ का आधार है वह पीछे को छिपा हुआ अपरिचित पड़ा है। एक फ्रांस देश के पदार्थ विद्यावाले ने हाल में ही यों कहा है कि "जड़ द्रव्य कोई वस्तु नहीं है, आकाश वायु में केवल छेद ही छेद है और कुछ नहीं है।" प्रोफेसर आसबर्न रैनल्डज़ साहब का जो प्रसिद्ध सिद्धान्त है उससे भी यह वचन मिलता है। दिव्य शक्तियों से निर्णय करने से भी, यह बात सच्ची जान पड़ती है और इस रीति से उस बात का निरूपण होता है, जो पूर्व की पवित्र पुस्तकों में लिखी है अर्थात् यह प्रकृति अथवा जड़द्रव्य माया या भ्रम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतिम मूल प्रकृति, जैसा कि यहां से देखने से दिखायी पड़ती है, वह वस्तु है जिसको वैज्ञानिक लोग आकाश वायु कहते हैं। इस आकाश वायु से भरी हुई शून्य (आकाश की पोल) हमारी स्थूल इंद्रियों को रीति (खाली) दिखायी पड़ती है, तथापि वास्तविकता में यह आकाश वायु इतना गाढ़ा है कि इससे अधिक गाढ़ा और कोई वस्तु विचार में भी नहीं आ सकता। प्रोफेसर रैनल्डज साहब ने निरूपण किया है कि इसका *गाढ़ापन (घनत्व) पानी के गाढ़ेपन से दस हजार गुणा अधिक है और उसका सामान्य दबाव एक वर्ग इंच पर साढ़े सात लाख टन अर्थात् दो करोड़ चार लाख मन है।

आकाश वायु के ऊंचे कक्ष के विषय में केवल दिव्य दृष्टि से ही जाना जा सकता है। हमें स्वयं तो इसका निश्चय नहीं है, परन्तु एक समय ऐसा मानना पड़ेगा कि जब शून्य आकाश में सारी पोल इस आकाश वायु से भरी हुई थी। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि किसी बड़े पुरुष ने (जो हमारे सूर्यजगत का ईश्वर नहीं था, वरन् इससे अनुमान से इतना ऊंचा था कि जिसकी कोई सीमा नहीं) इस पदार्थ के किसी ऐसे खंड में जो एक विश्व की लम्बाई-चौड़ाई से भी बड़ा है। अपनी आत्मा या शक्ति डालकर उसकी शान्त अवस्था को बदल दिया। इस शक्ति को डालने से वैसा ही फल हुआ, जैसे बड़े वेग के श्वास के फूंकने से होता है, अर्थात् उससे इस आकाश वायु में अनगिनत नन्हें-नन्हें गोल बुदबुदे बन गये और यही बुदबुदे अन्तिम परमाणु हैं, जिनसे हमारे जड़ पदार्थ की सामग्री बनी है। ये

---

* अपनी हवा का दबाव १४.७ पाउण्ड अर्थात् अनुमान ७॥ सेर का है और इस हिसाब से आकाश वायु का सामान्य दबाव अपनी हवा के दबाव की अपेक्षा ग्यारह करोड़ बयालीस लाख, पच्चासी हजार सात सौ चौदह (११,४२,८५,७१४) गुना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमाणु रसायन विद्या के अणु नहीं हैं और न भूलोक के अन्तिम परमाणु हैं। ये बुदबुदे इस लोक में बहुत ऊंचे सूक्ष्म कक्षा के हैं और जिनको हम साधारण बोली में अणु कहते हैं, वे हर एक ऐसे बहुत से बुदबुदों की पोटलियां हैं। इसका आगे वर्णन किया जायेगा।

जब हमारे सूर्य जगत् का ईश्वर अपने जगत् को बनाने लगता है। तब उसको यह सामग्री तैयार मिलती है अर्थात् उन नन्हें-नन्हें बुदबुदों का अनन्त ढेर, जिससे हमारे भांति के जड़ पदार्थ बन सकते हैं। ईश्वर पहले आकाश में अपनी अधिकार भूमि की सीमा बांधता है। यह भूमि एक बड़े गोले (ब्रह्माण्ड) के आकार की होती है, जिसकी परिधि फैलाव में इतनी अधिक होती है कि इस जगत् में जो आगे ग्रह बनेंगे उनमें से दूर से दूर के ग्रह के घूमने का मार्ग भी भलीभांति इसके भीतर समा जाये। उस गोले के भीतर ईश्वर एक प्रकार का अत्यन्त बड़ा भँवर डाल देता है, अर्थात् उस बुदबुदों की ढेर को ऐसा चला देता है जिससे सब बुदबुदे बीच में सिमटकर एक बड़ी ढेरी में इकट्ठे हो जाते हैं और भविष्य में इस सामग्री से आकार रहित सृष्टि बनेगी।

इस बड़े घूमते गोले में वह लगातार धक्के देता है, जिससे बुदबुदे अधिक से अधिक मिश्रित ढेरियों में इकट्ठे होते जाते हैं और इससे उतार चढ़ाव के गाढ़ेपन के अणुओं के सात लोक बन जाते हैं जो एक ही स्थान में एक केन्द्र पर एक दूसरे में प्रविष्ट होते हैं।

अपने तीसरे स्वरूप ब्रह्मा से वह इस विशाल गोले में पहला धक्का देता है, इससे उस गोले भर में बहुत से नन्हें-नन्हें भंवर बन जाते हैं। ऐसा हर एक भंवर ४९-४९ बुदबुदे खींचकर उनको नियमित रूप में रच देता है। इन बुदबुदों की छोटी-छोटी रचनायें (झुंड) दूसरे लोक के लिये अणु बन जाते हैं। सबके सब बुदबुदे इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचना में काम नहीं आ जाते, वरन् सबसे ऊँचे अथवा पहले लोक के अणुओं का काम देने के लिये जितने चाहिये, उतने बुदबुदे फुटकर छोड़ दिये जाते हैं। समय आने पर दूसरा धक्का या झोंका लगता है, जिससे इन ४९ बुदबुदे वाले अणुओं में थोड़े से छोड़कर और सब पहले भीतर खिंच जाते हैं और फिर बाहर फेंक दिये जाते हैं, जिससे उनमें नये सिरे से भँवर पड़ जाते हैं। इन नये भँवरों में हर एक में (४९२) अर्थात् ४९×४९ अथवा २४०१ बुदबुदे आ जाते हैं। ये तीसरे लोक के लिये अणु बन जाते हैं और जो थोड़े से ४९ बुदबुदेवाले अणु फुटकर छूट गये थे, वे इतने थे कि उनसे दूसरे लोक के अणुओं का काम चल जाये। फिर कुछ समय बाद तीसरा झोंका आता है, जिसके लगने से (४९२) ४९×४९ अथवा २४०१ बुदबुदेवाले अणु प्राय: बिखर कर अपने असली रूप में ही आ जाते हैं और फिर (४९३) ४९×४९×४९ अर्थात् ११७६४९ बुदबुदों का एक-एक अणु बन जाता है और ये चौथे लोक के अणु हैं। इसी प्रकार बार-बार बिखरकर बनना हर एक झोंके पर होता है। यहां तक कि इन लगातार झोंको में से चौथे झोंके में पांचवें लोक में (४९४) यानी ५७६४८०१ बुदबुदों का एक अणु बनता है और छठें लोक में पांचवें झोंके से (४९५) या २८२४७५२४९ बुदबुदों का एक-एक अणु छठें लोक का बनता है और छठें झोंके में ४९६ अर्थात् १३८४१२८७२०१ असली बुदबुदों का एक एक अणु सातवें अर्थात् सबसे नीचे लोक का बन जाता है।

यह सातवें लोक का अणु भूलोक का अन्तिम (सूक्ष्म से सूक्ष्म) अणु हैं। यह वह अणु नहीं है, जिनको रसायन अणु कहते हैं। किन्तु यह वे अन्तिम कक्षा के सूक्ष्म अणु हैं, जो आपस में मिल मिलकर रसायन विद्यावालों के अणु बनाते हैं। अब हम उस व्यवस्था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक पहुंच गये हैं कि इस बड़े भँवर खाते हुए गोले के भीतर सात तरह के द्रव्य या सात तरह के पदार्थों की सामग्री बन गई है। ये सातों मूल में एक ही हैं, क्योंकि ये सब एक ही भांति के बुदबुदों से बने हुए हैं, परन्तु इनमें भेद यह है कि कोई अधिक घना अथवा गाढ़ा है और कोई कम। ये सब सातों प्रकार के द्रव्य एक दूसरे के भीतर भली-भांति मिले हुए हैं, इसलिये गोले के भीतर, चाहे जहां से कुछ भाग गोले का लिया जाये, उसमें हर तरह के द्रव्य के नमूने मिलेंगे, इसमें केवल इतना अन्तर रहेगा कि जैसे-जैसे भारी अणु होंगे, वे केन्द्र की ओर अधिक से अधिक मिलते जायेंगे।

ईश्वर के तीसरे स्वरूप (ब्रह्मा) का सातवां धक्का लगने पर भूलोक के अणु जो पहले बन चुके थे, अब अपने असली फुटकर बुदबुदों में नहीं बिखरते। किन्तु कई-कई इकट्ठे होकर ढेरियां बन जाती हैं और इस प्रकार भांति-भांति के द्रव्य बन जाते हैं कि जो रसायन विद्या के तत्त्वों के पूर्वरूप हैं और इनसे आपस में जुड़-जुड़ कर भांति-भांति के रूप बनते हैं जिन्हें पदार्थ विद्यावाले रसायन के तत्त्व कहते हैं। इनके बनने में युग के युग बीत जाते हैं और इनका बनना एक नियमित क्रम से और कई शक्तियों के लगने से होता हैं—जैसा सर विलियम क्रुक ने अपने उस लेख में, जो तत्त्वों की उत्पत्ति पर (दी जीनिसिस आफ दी ऐलिमेन्ट्स) है, में ठीक दर्शाया है। सच तो यह है कि इनके बनाने की क्रिया अब भी समाप्त नहीं हुई है, हमारी जानकारी में 'युरेनियम धातु' ऐसा तत्व है जो सबसे पीछे बन पाया है और जो सब तत्त्वों से भारी है, परन्तु अधिक पेंचदार बनावट के तत्त्व शायद आगे और भी बन जायें।

समय जैसे-जैसे निकलता गया वैसे-वैसे गाढ़ापन बढ़ता गया और फिर वह अवसर आ गया कि बड़े चमकीले बादलों जैसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंडल बन गया। यह बराबर तेजी से घूमता रहा और जैसे-जैसे यह ठंडा होता गया, चपटा होकर उसका बड़ा चाक बन गया और धीरे-धीरे फटकर उसके एक के भीतर एक छल्ले से बन गये और उनके बीच में नाभी सी रह गई, यह रचना जैसे आजकल शनि ग्रह दिखायी पड़ता है, उससे मिलती-जुलती थी। परन्तु उससे बहुत बड़ी क्रमोन्नति के लिये ग्रहों से काम लेने का समय जब नजदीक आ गया, तब ईश्वर ने हर एक छल्ले के दल में एक छोटा भंवर डाला, जिसमें उस छल्ले का बहुत कुछ भाग (माद्दा) धीरे-धीरे इकट्ठा हो गया। ये टुकड़े इकट्ठे होकर आपस में टकराने लगे, जिससे गर्मी फिर पैदा हो गई और जो ग्रह उनसे बना, वह बहुत समय तक दहकता हुआ वायु का पहाड़ सा बना रहा। धीरे-धीरे वह फिर ठंडा हुआ यहां तक कि वह ऐसा हो गया कि उसमें हमारे जैसे प्राणी रह सकें। इस तरह सभी ग्रह बने थे।

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं ये लोक आपस में एक के भीतर एक पैठे हुए हैं, इन लोगों की सामग्री लगभग सब इस समय तक इकट्ठी हो चुकी थी और उससे नये ग्रहमंडल बन चुके थे। हर एक ग्रहमंडल ऐसे तरह-तरह की सामग्रियों से बनाया गया था और ये सामग्रियां (द्रव्य) अब भी हर एक में हैं। यह पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, केवल स्थूल पदार्थों का ही एक बड़ा गोला नहीं है अर्थात् इसमें केवल सबसे स्थूल और नीचे लोक के ही अणु नहीं हैं, किन्तु इसके साथ छठें, पांचवें, चौथे और अन्य लोकों के भी बहुत से अणु लगे हुए हैं। पदार्थ विज्ञान के अभ्यासी यह बात भलीभांति जानते हैं कि कड़े से कड़े पदार्थों में भी कण कभी आपस में एक दूसरे से छुए हुए नहीं हैं। यहां तक कि इन कणों के बीच में इतना स्थान सदैव छुटा रहता है कि उस खाली स्थान की अपेक्षा (सामने) कणों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकार अत्यन्त छोटा होता है। किसी गाढ़े पदार्थ के कणों के बीच में इतना खाली जगह रहती है कि उसमें सब दूसरे लोकों के सूक्ष्मतर हलके सब भांति के कण पड़े ही नहीं रह सकते हैं, किन्तु उनके बीच में और उनके चारों ओर भलीभांति घूम सकते हैं। इसलिये यह भूगोल जिस पर हम रहते हैं एक लोक नहीं है। किन्तु सात एक दूसरे के भीतर पैठे हुए लोक हैं जो सब एक ही ठौर में हैं केवल भेद इतना ही है कि केन्द्र से स्थूल पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थों के अणु (वायु मंडल) चारों ओर अधिक दूर तक फैले हुए हैं।

हमने इन एक दूसरे में पैठे हुए लोकों के अलग-अलग नाम रख दिये हैं कि जिससे इनकी बात करने में सुविधा रहे। पहले लोक के लिये कोई नाम नहीं चाहिये, क्योंकि मनुष्य का उससे अभी सीधा सम्बन्ध नहीं हुआ है, परन्तु जब उसकी बात करने की जरूरत पड़े तो उसको ब्रह्मलोक (आदिलोक) कह सकते हैं। दूसरे लोक को अनुपादक लोक कहते हैं, क्योंकि इस लोक में ब्रह्म के तेज की वे चिंगारियां हैं जिनको मानुषी जीवात्मा कहते हैं। परन्तु ऊंची से ऊंची, जो दिव्य दृष्टि अभी हो सकती है, उससे ये दोनों लोक अभी अलग हैं। तीसरा लोक (वायु मंडल) जिसके हर एक अणु में २४०१ बुदबुदे होते हैं, आत्मा का लोक कहलाता है। क्योंकि मनुष्य में अभी जो ऊंचे से ऊंची आत्मा है वह इस लोक में काम करती है। चौथे लोक का नाम बुद्धि लोक है, क्योंकि उससे अन्तर ज्ञान की ऊंची से ऊंची लहरे आती हैं। पांचवां मनलोक (स्वर्गलोक) कहलाता है क्योंकि इस लोक की सामग्री (पदार्थ) से ही मनुष्य का मन बनता है। छठे का नाम वासना या अंतरिक्ष लोक है, क्योंकि मनुष्य के रागद्वेषों से इस लोक के अणुओं में लहरें (कम्पन) पैदा होती हैं, इस लोक का नाम पिछले समय के रसायनवालों ने तारागण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक रखा था, क्योंकि स्थूल लोक के देखते इसके पदार्थ अणु तारा से या चमकते हुए होते हैं। सातवां लोक उस तरह के पदार्थों का बना हुआ है कि जिसको हम अपने चारों ओर देखते हैं, और इस लोक को स्थूल या भूलोक कहते हैं।

वह पदार्थ (सामग्री) जिससे ये सब एक दूसरे में मिल कर बना है, वास्तव में यह एक ही है, परन्तु उसमें अणुओं की रचना में भेद है और किसी में अणु अधिक घने हैं और किसी में कम। इसलिये इन भांति-भांति के पदार्थों में कम्पन अलग रीति का होता है। ये जो कम्पन (लहरें) उतार चढ़ाव के ऐसे होते हैं मानो इनका कई सप्तकों का एक बड़ा सरगम है। स्थूल पदार्थ में इस सप्तक में से नीचे के अर्थात् सबसे उतरे हुए कुछ सप्तक निकलते हैं। वासना लोक के पदार्थ में इन सप्तकों से ऊपर के कुछ सप्तक और मनलोक के पदार्थ में कुछ सप्तक उनसे भी ऊंचे निकलते हैं, इसी तरह से ऊपर के और भी समझ लिये जायें।

इन लोकों में से हर एक लोक के अलग-अलग ढंग के अणु और अणुओं की अलग-अलग ढंग की रचनायें हैं और ये रचनायें अपने-अपने लोकों के पदार्थ हैं। हर एक लोकों में इन पदार्थों के सात विभाग हैं और ये विभाग कणों के कम्पनों के भेदों पर रखे गये हैं। पहले वर्णन किया जा चुका है कि किसी लोक के एक उपविभाग का कण उसके ऊपर के उपविभाग के कई कणों के एक विशेष तरीके से मिलने से बनता है। ये कण ऊपर के उपविभाग के कण से बड़ा होता है और सदा तो नहीं, परन्तु बहुधा यह देखा गया है कि जितना बड़ा कण होता है, उसका कम्पन उतना ही धीमा होता है। गरम करने से कणों का आकार बढ़ जाता है और उनके कम्पन (लहरों) की गति तेज और उसकी लपक बड़ी हो जाती है जिससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि वे कण अधिक स्थान घेर लेते हैं और उन कणों से बना हुआ पदार्थ फूल जाता है, यहां तक कि फूलते-फूलते वह अवस्था आ जाती है कि कणों की रचना बिखर जाती है और इससे कण अपनी पहले की अवस्था से उसके ऊपर की सूक्ष्मतर अवस्था में आ जाता है। भूलोक में कण घनेपन में उतार- चढ़ाव से सात तरह के हैं और ये ही भूलोक के सात विभाग क्रम से बन जाते हैं और इनके नाम से ऊपर गिनने पर हम ये रखते हैं पृथ्वी (ठोस) जल (द्रव) वायु आकाश या प्राणवायु महाकाश, पराकाश और परमाकाश।

परमाकाश वह उपविभाग है, जिसमें सब वस्तुयें भूलोक की अमिश्रित अणुओं से बनाई गई हैं, परन्तु इन अणुओं को पहले से इकट्ठा करके कोई कण या कण समूह नहीं बनाये गये हैं। यदि हम भूलोक के सबसे छोटे अणु को ईंट की उपमा दें और परमाकाश में कोई वस्तु या आकार बनाना चाहें तो ईंटें इकट्ठी करके उनसे आकार बनाना होगा। दूसरे उपविभाग अर्थात् पराकाश में यदि पदार्थ बनाना चाहें तो कुछ ईंटे (अणु) पहले इकट्ठी की जायेंगी और चार-चार, पांच-पांच, छः-छः या सात-सात ईंटों को जोड़कर सिलें बना ली जायेंगी और उन सिलों से घर बनाये जायेंगे। पराकाश की कई सिलें जुड़कर यदि विशेष आकार बना दिया जाये तो तीसरा उपविभाग अर्थात् महाकाश बनाने की सामग्री बन जायेयी। इसी प्रकार सबसे नीचे उपविभाग (ठोस) तक बनते चले जायेंगे।

किसी वस्तु को ठोस से द्रव बना देना अर्थात् पिघला देना, उसके कणों के कम्पन को इतना बढ़ा देना है कि अन्त में कण बिखर कर असली अणु या छोटे कण रह जायेंगे जिनसे वे कण बने थे। यह क्रिया क्रम से बार-बार की जा सकती है, यहां तक कि अन्त में हर एक भौतिक (भूलोक की) वस्तु भूलोक के अंतिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अणुओं में घट सकती है। इन लोकों में से हर एक लोक के अलग-अलग निवासी हैं और इन निवासियों की इंद्रियों को साधारण दशा में अपने अपने ही लोक की लहरों (कम्पनों) का ज्ञान हो सकता है। हम सब भूलोक में रहते हैं और हम जो इस लोक में देखते सुनते हैं ये और इन्द्रियों से ज्ञान हासिल करते हैं, वह हमको हमारे चारों ओर से भूलोक के पदार्थ हैं उनके कम्पनों द्वारा होता है। भूलोक की तरह हमारे चारों ओर वासना लोक (भुवर्लोक) मनलोक (स्वर्गलोक) और और भी लोक हैं जो हमारे स्थूल लोक में समाहित हैं, परन्तु हमको साधारण दशा में उनका ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि उन लोकों के पदार्थों के कम्पन (लहरें) हमारी इन्द्रियों को नहीं लगते हैं। यह बात ठीक ऐसी ही है जैसे कि हमारी स्थूल आंखें इन्द्रधनुष के सात रंग (लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और सोसनी) तो देख सकती हैं, परन्तु इन्द्रधनुष के किनारे पर सोसनी रंग के आगे और भी रंग हैं। पदार्थ वैज्ञानिको ने जिसका निर्णय कर लिया है और जिन्हें दिव्य दृष्टिवाले देख सकते हैं। किन्तु हमारी स्थूल आंखों से वे नहीं दिखायी पड़ते हैं। भूलोक का कोई जीव आकाश में जिस स्थान पर खड़ा हो उस स्थान में सम्भव है कि कोई वासना लोक का जीव भी खड़ा हो, परन्तु इनको एक दूसरे का कुछ भी बोध न होगा और न चलने फिरने में एक से दूसरे की रोक होगी। यही व्यवस्था और लोकों की भी है। हम इस क्षण भी इन सूक्ष्म अणुओं के लोकों से घिरे हुए हैं और ये लोक हमारे इतने निकट हैं जितना यह स्थूललोक है और उन लोकों के निवासी हमारे आर-पार और आस-पास घूम रहे हैं, परन्तु हमको उनका कुछ भी आभास नहीं होता है।

हमारी क्रमोन्नति का मध्य आजकल हमारे इस गोल पर है, जिसे हम पृथ्वी कहते हैं। इसलिये केवल इस पृथ्वी के सम्बन्ध में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही अब आगे हम इन ऊंचे लोकों का वर्णन करेंगे और आगे जब जब भुवर्लोक या वासना-लोक का शब्द काम में आये तो उससे केवल हमारे पृथ्वी के भुवर्लोक का अभिप्राय होगा, न कि (पहले की भांति) सम्पूर्ण सूर्य जगत् के भुवर्लोक का। हमारे पृथ्वी का भुवर्लोक भी एक गोला या मंडल है जो कि भुवर्लोक के सूक्ष्म अणुओं का बना हुआ है। यह भुवर्लोक आकाश में उसी ठौर में है जिसमें कि हमारी पृथ्वी का स्थूल गोला है, परन्तु इसके अणु बहुत ही हल्के हैं, यह हमारे चारों ओर हमारे वायुमंडल से बाहर अत्यन्त दूरी तक आकाश में चारों ओर फैला हुआ है। यहां तक कि यह प्राय: चन्द्रमा तक फैला हुआ है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमते-घूमते पृथ्वी के कभी नजदीक आ जाता है और कभी दूर। चन्द्रमा की पृथ्वी से मध्यम दूरी लगभग दो लाख चालीस हजार मील की है और जब चन्द्रमा घूमते-घूमते पृथ्वी के बहुत ही नजदीक आ जाता है तब तो उसका भुवर्लोक पृथ्वी के भुवर्लोक से मिल जाता है, परन्तु जब चन्द्रमा घूमते-घूमते पृथ्वी से अत्यन्त दूर हो जाता है तब पृथ्वी और चन्द्रमा के भुवर्लोकों के बीच में अंतर रह जाता है। हम मनलोक का शब्द उस और भी बड़े मंडल के लिये काम में लायेंगे, जो मानसिक अणुओं से बना है और जिसके बीच में हमारी स्थूल पृथ्वी है।

इसी प्रकार और भी ऊंचे अर्थात् सूक्ष्मतर गोले या लोक हमारी पृथ्वी के हैं जो इतने इतने फैलाव के हैं कि हमारे सूर्यजगत् के बृहस्पति, शुक्र आदि दूसरे ग्रहों के सूक्ष्म लोकों से भी छू जाते हैं। ये हमारे सूक्ष्म लोक इतने फैलाव के हैं तो भी उनके अणु हमारे इस स्थूल पृथ्वी के थल पर हमारे चारों ओर यहां ऐसे ही घिरे हुए हैं जैसे कि दूसरे लोकों के अणु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये सब सूक्ष्म अणुवाले गोले हमारे (हमारी पृथ्वी भुवन के) अंग हैं और वे अपने स्थूल अंग अर्थात् इस स्थूल पृथ्वी के साथ-साथ सूरज के चारों ओर घूम रहे हैं। साधक को चाहिये कि जब पृथ्वी की बात चले तो वह सहज ही समझ ले कि इसका अभिप्राय इन सब एक दूसरे में समाहित लोकों के इकट्ठे पिण्ड (भुवन) से है, न कि इस छोटी सी स्थूल गोली पृथ्वी से जो इस पिण्ड के बीचोंबीच बिन्दु की तरह है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. प्राण का विकास

ये सब ऊपर वर्णन किये हुए प्राण के वेग जिनसे ये एक दूसरे में समाये हुए लोक बने हैं, ईश्वर के तीसरे स्वरूप अर्थात् ब्रह्मा से निकले हैं। इसीलिये ईसाइयों की शैली में यह स्वरूप जीव देने वाला कहलाता है अर्थात् वह आत्मा जो (मूल प्रकृति रूपी) आकाश के जल पर विद्यमान थी। ब्रह्मविद्या की पुस्तकों में ये सब वेग प्रायः इकट्ठे लिये जाते हैं, और इनका नाम पहला प्रवाह रखा जाता है।

जब लोक इस अवस्था तक बन चुके थे और बहुत से रसायन के तत्त्व (सोना, पारा, आक्सीजन आदि) भी प्रकट हो चुके थे, तब दूसरे प्राण का झोंका आया और ये ईश्वर के दूसरे स्वरूप अर्थात् विष्णु से निकला। इस प्रवाह के साथ-साथ मिलने की शक्ति भी आई। सब लोकों में उस समय लोक लोक के तत्व तक बन चुके थे। यह दूसरा प्रवाह इन तत्त्वों को मिला कर शरीर बनाने लगा, जिन शरीरों में फिर इस प्रवाह ने जान डाल दी और इस प्रकार इस प्रवाह ने सात भांति की सृष्टियां (मनुष्य, पशु, वनस्पति व कंकड़, पत्थर आदि खनिज) रचीं।

ब्रह्मविद्या सात प्रकार की सृष्टियां मानती है, क्योंकि इसमें मनुष्य पशुसृष्टि से अलग माना गया है और इनके सिवाय क्रमोन्नति में तीन और सृष्टियां मानी है, जो आंख से नहीं दिखायी देती और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनके मध्य समय की भाषा के अनुसार तात्विक सृष्टि अर्थात् कामरूपादिगण सृष्टि नाम रखा गया है।

दैवी जीवन शक्ति की धारा जड़ प्रकृति में ऊपर से उतरती है और इस उतार की दो अवस्थायें मानी जा सकती हैं। पहले तो धीरे-धीरे अधिक से अधिक गाढ़े अणु धारण करना और फिर इन धारण किये हुए वाहनों को धीरे-धीरे उतार डालना। पहली से पहली या सूक्ष्म से सूक्ष्म अवस्था, जिसमें उसके वाहन ठीक-ठीक दिखायी देने लगते हैं, मानसिक अर्थात् मनलोक है, जो सूक्ष्म से स्थूल की ओर गिनते हुए पांचवी है। यह पहली कक्षा है जिस पर अलग-अलग गोले होते हैं। पढ़ने के काम में सुगमता के लिये इस मनलोक के दो भाग कर दिये जाते हैं, जिनको कि उनके अणुओं के न्यूनाधिक गाढ़ेपन के विचार से उत्तम मन और अधम मन कहते हैं। उत्तम मन में मन लोक के तीन सूक्ष्मतर उपविभाग होते हैं, अब रहे स्थूलतर चार उपविभाग ये अधम मन के होते हैं। जब दैवी जीवन-शक्ति का प्रवाह उत्तम मनलोक तक उतर आता है, तब वहां के सूक्ष्म तत्त्वों को वह इकट्ठा कर लेता है और उनको मिलाकर उस लोक की वस्तुयें बनाता है और इन्हीं वस्तुओं से वह दैवी शक्ति आकार बनाती है और उनमें वह निवास करने लग जाती है। इसको हम प्रथम तात्विक सृष्टि या प्रथम कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं।

इस कक्षा में बहुत काल तक अलग-अलग आकारों में क्रमोन्नति करके जीवन शक्ति का प्रवाह जो लगातार नीचे उतरने की चेष्टा कर रहा है, इन आकारों से यह सीख जाता है कि मैं ही यह आकार हूं और इसलिये इनमें निवास करने और समय-समय पर उनसे हट जाने के बदले यह प्रवाह इस योग्य हो जाता है कि इन आकारों को सदा के लिये धारण कर लें और इनमें तन्मय हो जाये, ताकि आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस कक्षा से बढ़कर वह जीवन-प्रवाह और भी नीचे के स्थूलतर आकारों में कुछ काल के लिये निवास करे। जब वह जीवन-प्रवाह इस कक्षा को पहुंच जाता है, तब उसको हम दूसरी तात्विक सृष्टि अर्थात् दूसरी कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं। इस सृष्टि की जीवनशक्ति (प्राण) तो उत्तम मन की कक्षा में रहता है, परन्तु उसके वाहन (आकार) जिनके द्वारा वह प्रकट होती है अधम मन की कक्षा पर होते हैं। फिर इतने ही बड़े कल्पांतरों के बीतने पर यह देखा जाता है कि इस प्रवाह के नीचे उतरने के स्वभाव से यही क्रम फिर होने लगता है और एक बार फिर यह जीवन शक्ति अपने आकारों के साथ तन्मय हो जाती है और अधम मन की कंक्षा में निवास करने लग जाती है जिससे वह अब वासना लोक के शरीरों को जीवित करती है। इस कक्षा पर हम उसे तीसरी तात्विक सृष्टि अर्थात् तीसरी कामरूपादिगण सृष्टि कहते हैं।

इन सब आकारों के लिये जब हम यह कहते हैं कि कोई सूक्ष्मतर है और कोई स्थूलतर तो इससे यह मतलब है कि आपस में एक दूसरे सूक्ष्म या स्थूल हैं, परन्तु ये सबके सब इतने सूक्ष्म हैं कि भूलोक (स्थूल लोक) में जिन-जिन आकारों को हम जानते हैं उनसे ये अत्यंत ही सूक्ष्म हैं। ये तीनों अलग-अलग सृष्टियां हैं और इनमें से हर एक में उतने ही बहुत से भिन्न-भिन्न आकार हैं जितने पशुओं की या वनस्पति आदि की सृष्टि में दिखायी पड़ते हैं। तीसरी तात्विक सृष्टि के आकारों में निवास करने में बहुत बड़ा समय व्यतीत करके यह जीवनप्रवाह इन आकारों से भी अन्त में तन्मय हो जाता है और इस प्रकार खनिज सृष्टि के सूक्ष्म (प्राणमय) भाग को धारण करके उस सृष्टि में जान डाल देता है। यहां यह बता देना उचित है कि वनस्पति या पशु सृष्टि में जितनी जान है ठीक उतनी ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खनिज में भी है, केवल यहां यह ऐसी दशा में है कि वह उतनी स्वतंत्रता से प्रकट नहीं होने पाती। खनिज सृष्टि में उन्नति करते करते यह जीवन प्रवाह अपने नीचे उतरने के स्वभाव से भूलोक के सूक्ष्म (प्राणमय) भाग से भी पहले की तरह तन्मय हो जाता है और उसमें बैठकर आगे ऐसे खनिज पदार्थों के स्थूल शरीरों में जान डालता है, जो हमारी इन्द्रियों से जाने जा सकते हैं।

खनिज सृष्टि में हम केवल उन्हीं पदार्थों को नहीं गिनते हैं जो साधारण रीति से धातु या खनिज कहलाते हैं, किन्तु द्रव्य और वायु तथा बहुत से ऐसे सूक्ष्म आकाश या प्राणवायु (ईथिरिक) पदार्थों को भी गिनते हैं, जिनकी स्थिति का पश्चिमी वैज्ञानिको को परिचय नहीं है। हमारे जानकारी में जितने जड़ पदार्थ हैं सब सजीव हैं और उनमें जो जीव है, उसका विकास सदा बढ़ता रहता है। जब वह जीव खनिज कक्षा के मध्य में पहुंच जाता है, तब नीचे उतरने की चेष्टा बन्द हो जाती है और उसकी स्थिति में ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति आ जाती है, मानो (प्रश्वास) सांस लेना आरम्भ हुआ।

जब खनिज उन्नति पूरी हो जाती है, तब जीव पीछे वासना लोक में चला जाता है, परन्तु भूलोक में जो अनुभव उसने किये हैं, उनसे जो लोभ हुए हैं वह उन्हें अपने साथ ले जाता है। इस अवस्था पर वह वनस्पति के आकारों को सजीव करता है और अपनी तरह अधिकतर निर्मलता से प्रकट करने लगता है। इसको हम साधारण बोली में जीव अर्थात् सब प्रकार की वनस्पति का जीव कहते हैं और यह अपनी उन्नति के क्रम में आगे चलकर वनस्पति-सृष्टि को छोड़ देता है और पशु सृष्टि को जीवित करता है। इस कक्षा पर पहुंचना इस बात का चिन्ह है कि जीव वासना-लोक से और भी आगे बढ़ गया है और अब अधम मनलोक की कक्षा में काम कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा है। इस मनलोक से भौतिक पदार्थ में काम करने के लिये जीव को, इनके बीच में जो वासना-लोक है, उसके द्रव्य में होकर चेष्टा करनी पड़ती है और पशुसृष्टि में ये वासनिक द्रव्य किसी वर्ग के पुंजजीव अर्थात् जातिगत जीव के वासना शरीर में नहीं रहता, वरन एक ही पशु का व्यक्तिगत वासना शरीर हो जाता है, जैसा आगे समझाया जायेगा।

इन सृष्टियों में हर एक में जीवप्रवाह इतना बड़ा समय व्यतीत करता है कि जो हमारे मानने में कठिनाई से आ सकता है, यही नहीं वरन वह उस सृष्टि में उन्नति के मार्ग में एक नियत क्रम से चलता है, यह क्रम किसी एक सृष्टि की नीची कक्षाओं से चलता है और उसकी ऊंची से ऊंची कक्षा पर समाप्त हो जाता है। यों सम्भव है कि वनस्पति सृष्टि में जीवन शक्ति घास या सिवाल के रूप को लेकर अपना क्रम चलाये और वन के विशाल बड़, पीपल आदि पेड़ों को सजीव करके अपना क्रम समाप्त करे और यों ही पशुसृष्टि में उसका क्रम मच्छरों या अदृश्य कीड़ों से चले और उत्तम से उत्तम जरायुज (दूध पीने वाले) पशुओं में समाप्त होये।

यह सारा क्रम नीचे रूपों या शक्लों से ऊंचे रूपों तक या सादा रूपों से पेचीदा रूपों तक लगातार उन्नति का है। परन्तु यह क्रमोन्नति मुख्यतया रूप की नहीं, किन्तु उस जीव की है जो इस रूप में रहता है। ये रूप भी उन्नति करते हैं और समय-समय पर उत्तम होते जाते हैं, परन्तु रूपों की उन्नति का केवल यह प्रयोजन है कि जीव के प्रवाह ज्यों-ज्यों उन्नत होते जायें त्यों-त्यों ये रूप भी उनके वाहन बनने के लिये योग्य होते जायें। जब पशुसृष्टि में जीवनशक्ति ऊंची से ऊंची कक्षा तक पहुंच जाती है तब वह मनुष्यसृष्टि में ऐसे अवसरों के आने पर जाती है जिनका वर्णन आगे किया जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन–प्रवाह एक सृष्टि को छोड़ता है और दूसरी में चला जाता है और ऐसे ही अगर हमारा सम्बन्ध एक ही प्रवाह की एक ही लहर से होता तो किसी एक समय में एक ही सृष्टि मिल सकती। परन्तु ईश्वर ऐसी लहरें सदा लगातार भेजता रहता है जिससे किसी एक समय में हमें कई लहरें साथ–साथ काम करती हुई मिलती है। हमारी मनुष्य जाति भी एक ऐसी लहर हैं, परन्तु हम देखते हैं कि हमारे साथ ही साथ एक और लहर चल रही है जो पशुसृष्टि में है। यह वह लहर है जो ईश्वर में से हमसे एक मंजिल पीछे निकली है। ऐसे ही हम देखते हैं कि यह वनस्पति सृष्टि है जो तीसरी लहर है और यह खनिज्रसृष्टि है जो चौथी लहर है। इसके सिवाय हमारे चारों और तीनों कामरूपादिगण सृष्टियां अर्थात् तीन तात्विक सृष्टियां हैं, जिनको दिव्यदर्शी योगी जानते हैं और वे पांचवी छठीं और सातवीं लहरें हैं। ये सब जो ईश्वर के दूसरे स्वरूप (विष्णु) से महत् प्रवाह निकला उसी की तरंगे हैं जो लगातार एक के पीछे एक उठी हैं।

यों हमारे उन्नति का यह एक ऐसा प्रबंध है, जिससे दैवी जीव अधिक से अधिक गहरी प्रकृति (जड़ सामग्री) में घुसता जाता है, ताकि इस प्रकृति के द्वारा उसको वे कम्पन मिल सकें जो इसके बिना उस पर लग नहीं सकते थे। अर्थात् बाहर से उसको वे धक्के मिलें जो क्रम से उस जीव में ऐसी कम्पन पैदा करें, जो उन धक्कों के कम्पन से मिलते हुए हों। इस सबका प्रयोजन यह है कि जीव उन कम्पनों का अनुभव करना सीख जाये। ऐसा करते करते जीव अपने आप उन कम्पनों को (बिना बाहर के धक्के लगे) पैदा करना सीख जाता है और इस तरह यह अध्यात्मिक प्राणी बन जाता है।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि जब यह जीवप्रवाह सर्वप्रथम ईश्वर में से निकला, तब यह शायद एक रस था और यह हम सर्वथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं जान सकते कि किस कक्षा पर यह ऐसा था, परन्तु जब यह सर्वप्रथम हमारे जानने में आया अर्थात् जब वह जीव अपने आप तो बुद्धिलोक में था, परन्तु उसका निवास उत्तम मन के लोक के द्रव्य के बने हुए शरीरों में था, तब वह एक बड़ा विश्वजीव नहीं रहा था वरन् उसके बहुत से जीव हो गये थे। अब कल्पना करें कि एक प्रवाह समान रस है। इसको यह समझ सकते हैं कि क्रम के पहले छोर पर यह एक बड़ा विश्वजीव था और दूसरे छोर पर जब मनुष्य कक्षा आ पहुंची तब हम यह देखते हैं कि इस बड़े जीव के बिखरकर करोड़ों व्यक्तिगत (मनुष्यों) छोटी छोटी जीवात्मायें बन गईं। इन दोनों छोरों के बीच में किसी मंजिल पर हमको मध्यम कक्षा की व्यवस्था मिलती है, अर्थात् बड़े विश्वजीत के विभाग और उपविभाग तो हो गये हैं, परन्तु ये अभी अन्तिम सीमा तक नहीं पहुंच पाये हैं।

हर एक मनुष्य एक अलग जीव है, परन्तु हर एक पशु या पेड़ अलग जीव नहीं है। मनुष्य का जीव भूलोक में किसी एक समय में केवल एक शरीर द्वारा प्रकाशित हो सकता है, परन्तु एक पशु (पाश्विक) जीव कई पशुओं के शरीरों में एक साथ प्रकाशित होता है और एक वनस्पति का जीव अलग-अलग कई पौधों में प्रकाशित होता है। इसका उदाहरण यह है कि सिंह सदा के लिये एक अलग व्यक्ति जैसा नहीं है, जैसे मनुष्य होता है। जब मनुष्य मरता है या यों कहें कि जब उसका जीव अपने भौतिक शरीर को उतार डालता है, तब वह स्वयं वैसा ही बना रहता है, जैसा पहले था अर्थात् वह सब दूसरे जीवों से अलग बना रहता है। जब सिंह मरता है तो अभी तक जो उसका पृथक जीव था, वह उस जीवपुंज में चला जाता है जहां से वह आया था। यह जीवपुंज ऐसा है इससे कई और सिंहों को एक ही समय में जीव मिलता है। इस पुंज को हम पुंजजीव कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे एक पुंजजीव से बहुत से सिंहों के शरीर लगे हुए होते हैं, मान लें कि ऐसे सौ शरीर उससे लगे हैं। इनमें से हर एक शरीर के साथ जहां तक वह जीता रहता है, पुंजजीव का सौवां हिस्सा लगा हुआ रहता है और जहां तक वह शरीर जीता रहता है यह जीव का अंश देखने में सब प्रकार से जुदा होता है, यहां तक कि अपने जीते जी सिंह ठीक उतना ही व्यक्तिगत जीव होता है जितना कि मनुष्य। परन्तु सिंह की व्यक्ति सदा रहने वाली नहीं है। जब सिंह मरता है तो उसका जीव उस पुंजजीव में पीछा आकर मिल जाता है जिसका कि वह अंश है और उसका वह अंश फिर उस पुंज में से अलग नहीं निकाला जा सकता है।

इसे समझने में इस रूपक से सहायता मिलेगी कि पुंजजीव को एक डोल भर पानी मान लिया जाये और सिंहों के सौ शरीर को सौ प्याले मान लिये जाये तो हर एक प्याले के साथ, जो उसमें से भरकर निकाला जाये, प्याला भर पानी डोल में से निकलेगा यह मानो अलग जीव है, यह पानी कुछ समय के लिये अपने बर्तन के रूप को धारण कर लेता है और दूसरे प्यालों के पानी से और डोल में बचे हुए पानी से यह कुछ समय के लिये जुदा होता है।

अब इन सौ प्यालों में हर एक में किसी न किसी भांति का रंग या गंध डाल दो। यह मानो वे गुण हैं, जो हर एक सिंह के जीव में उसकी जीवन अवस्था (ज़िन्दगी) के अनुभवों से उत्पन्न किये गये हैं। प्याले में से पानी अब डोल में डाल दो, मानो सिंह मर गया। रंगत या गंध सब डोलभर पानी में फैल जायेगा, परन्तु फैलने के पहले प्याले में भरे हुए पानी की जो रंगत या गंध थी, उसको देखते हुए अब फैलने पर डोल में यह रंगत या गंध बहुत हलकी और फींकी रह जायेगी। जो गुण कि पुंजजीव वाले किसी एक सिंह ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्पन्न किये वे इस रीति से सारे पुंजजीव में बँट जाते हैं, परन्तु बँटने में फीके या हलके रह जाते हैं।

अब हम उस डोल में से एक और प्याला भर कर निकालें, परन्तु जो पानी की किसी प्याले का एक बार डोल में मिला दिया गया है, वह का वही फिर नहीं निकल सकता है। हर प्याले में जो आगे डोल से निकलता जायेगा, कुछ न कुछ अंश रंगत और गंध के उन सब प्यालों के मिलेंगे, जिन जिन का पानी डोल में पीछा़ डाल दिया गया है। ठीक इसी रीति से जो जो गुण किसी एक सिंह के अनुभव से उत्पन्न हुए हों, अब उन सब सिंहों का जो आगे उस पुंजजीव में से पैदा होंगे साझे का धन बन जायेंगे, केवल यह भेद होगा कि इन सिंहों में यह गुण उतने उग्र या तेज न होंगे जितने कि उस सिंह में थे, जिसने असलियत में इन गुणों को उत्पन्न किया था।

पशुओं के जो जन्म स्वभाव होते हैं, उनकी यही व्याख्या है। यही कारण है कि बत्तख का बच्चा मुर्गी से सेये जाने पर भी पानी में चलता है और उसे तैरना सिखाने की कोई जरूरत नहीं होती है। मुर्गी के बच्चे अंडे में से निकलते ही बाज़ की छाया देखकर डर के मारे दुबक जाते हैं और कोई चिड़िया कृत्रिम युक्ति से सेई जाये और उसने कभी घोंसला न देखा हो तो भी वह घोंसला बनाना जानती है और अपनी परम्परा के अनुसार बना लेती है। पशुओं की नीची कक्षाओं में एक-एक पुंजजीव में इतने शरीर लगे होते हैं कि जिनकी गिनती करना कठिन है अर्थात् कुछ छोटे कीड़ों के पुंजजीव में असंख्या अरब-खरब तक शरीर होते हैं। परन्तु जैसे-जैसे पशुयोनि की ऊंची कक्षाओं को लें, वैसे ही एक-एक पुंजजीव के शरीर गिनती में कम होते जाते हैं और इसी कारण से इनकी व्यक्तियों में आपस में एक दूसरे से भेद अधिक से अधिक बढ़ते चले जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार पुंजजीव धीरे-धीरे बिखरते जाते हैं। डोल की उपमा को फिर लेकर ज्यों डोल में से प्याले पर प्याला पानी का निकाला जाता है और कुछ न कुछ उसमें रंग देकर फिर डोल में छोड़ दिया जाता है, त्यों-त्यों सारे डोल के पानी का रंग धीरे-धीरे गहरा होता जाता है। अब कल्पना करें कि एक प्रकार की खड़ी झिल्ली उस डोल के बीच में आर-पार ऐसी धीरे-धीरे बन जाये कि जिसकी खबर न पड़े और यह होते होते ठोस होकर परदा सा बन जाये जिससे इस डोल के आधे आधे दो भाग हो जाये। एक दाहिना, दूसरा बायां। और अब जो पानी के प्याले निकाले जायें वे उसी आधे भाग में डाले जायें, जिसमें से वे निकले थे।

इस प्रकार थोड़े समय में भेद दिखायी देने लगेगा और डोल के एक ओर के आधे का पानी दूसरे ओर के पानी का सा नहीं रहेगा। अब मानो एक के दो डोल बन गये और जब पुंजजीव में यह अवसर आ जाता है, तब उसके फटकर दो पुंजजीव हो जाते हैं। यह ठीक उसी तरह होता है जैसे पेड़ों या पशुओं के शरीरों में वृद्धि के क्रम में एक-एक कण के फटकर दो-दो हो जाते हैं। यों जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाता है पुंजजीव छोटे, परन्तु गिनती में अधिक होते जाते हैं, यहां तक कि चढ़ते-चढ़ते ऊंची से ऊंची कक्षा पर मनुष्य अवस्था आ जाती है कि जहां बिना बँटा हुआ एक ही व्यक्तिगत जीव रह जाता है जो फिर पुंज में नहीं जाता, किन्तु सदा जुदा बना रहता है।

पशु वनस्पति आदि में से कोई एक सृष्टि लें। उसे कोई न कोई एक जीवन प्रवाह सजीव कर रहा होगा, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस जीवन-प्रवाह के हर एक पुंजजीव को इस सारी सृष्टि में तली से चोटी तक जाना पड़े। अगर वनस्पति सृष्टि में कोई पुंजजीव वन के वृक्षों में है तो वह आगे जब पशु सृष्टि में जायेगा तो वह नीचे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पशु कक्षाओं को लांघ कर जायेगा, अर्थात् वह जन्तुओं और कीड़ों और सर्प, छिपकली आदि की योनि में नहीं जायेगा, वरन एक साथ वह नीचे दर्जे के दूध पिलाने वाले जरायुज पशुओं से आरम्भ करेगा। कीड़ों और सर्प, छिपकली आदि की योनि में वे पुंजजीव जायेंगे, जिन्होंने किसी कारण से वनस्पति सृष्टि को उस कक्षा से छोड़ दिया है कि जो वन के बड़े पेड़ों से बहुत नीचे पर है। इसी प्रकार वे पुंजजीव जो पशु सृष्टि में ऊंची से ऊंची कक्षा तक पहुंच गये हैं। मनुष्य बनकर ठेठ जंगली लोगों में जन्म नहीं लेंगे किन्तु कुछ ऊंची कक्षा के लोगों में। परन्तु ठेठ जंगली लोगों में वे भरती होंगे, जिन्होंने पशुसृष्टि को किसी नीची कक्षा से ही छोड़ा है। जीव प्रवाह अपनी शैली की शाखाओं को छोड़कर किसी दूसरी शैली की शाखा में टलकर नहीं जाता है।

पुंजजीव ईश्वर के सात मंत्रियों अर्थात् लोकपालों में से किसी न किसी के जीवन-प्रवाह से निकले हैं और अपने अपने निकास के अनुसार उनकी किसी एक कक्षा पर या हर एक कक्षा पर सात बड़ी बड़ी शैलियां होती हैं। इन शैलियों का एक दूसरे से भेद हर एक सृष्टि में चौड़े-चौड़े दिखायी पड़ता है और जो जो रूप किसी एक शैली में धारण किये जाते हैं वे माला के दानों की तरह एक दूसरे से सुंदर रीति से बैठते हुए होते हैं। इस प्रकार पशु, वनस्पति, खनिज और तीनों प्रकार की तात्विक सृष्टियों में से, हर एक की सात बड़ी शाखाएं हो सकती हैं और एक शैली पर चढ़नेवाला जीवप्रवाह अपनी शैली की शाखाओं को छोड़कर किसी दूसरी शैली की शाखा में टलकर नहीं जाता है।

इस दृष्टि से पशुओं, पेड़ों और खनिज पदार्थों की कोई ब्यौरेवार सूची अभी तक नहीं बनी है, परन्तु यह निश्चय है कि वह जीव जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खनिज योनि की किसी एक शाखा में है। वह खनिज योनि की दूसरी शाखा के किसी खनिज पदार्थ में नहीं जायेगा, अपनी शाखा के भीतर वह चाहे कितना फेरफार कर लें। जब यह चलकर वनस्पति या पशुसृष्टि में जायेगा, तब भी उन्हीं वनस्पति और पशुओं में जायेगा जो उसकी शैली के हैं न कि उनमें जो किसी दूसरी शैली के हैं और जब यह अन्त में मनुष्य कक्षा को पहुंचेगा, तब भी यह अपनी ही शैली के मनुष्यों में जन्म लेगा, न कि किसी दूसरी शैली के मनुष्यों में।

किसी पशु का जीव जब अपने पुंजज़ीव की कक्षा से इतना ऊंचा उठ जाता है कि वह उस पुंज में फिर जाकर नहीं मिल सकता, तब उस जीव में अहंता (मनुष्यता) आ जाती है। इस क्रिया का नाम व्यक्तिकरण है। यह क्रिया हरेक पशु के साथ नहीं हो सकती है, किन्तु केवल उन पशुओं के साथ हो सकती है जिनका भेजा एक विशेष कक्षा तक उन्नति कर चुका है और ऐसी मानसिक उन्नति प्राप्त होने के लिये प्रायः यह प्रथा है कि उस पशु का मनुष्यों से गाढ़ा सम्बन्ध कर दिया जाता है। इसलिये अहंता (मनुष्यता) की प्राप्ति केवल घरेलू जानवरों को ही सम्भव हो सकती है और इनमें से भी केवल किसी किसी जाति वालों को। इन सातों शाखाओं में हर एक के ऊपर के सिरे पर इन घरेलू जानवरों में से कोई न कोई जाति होती है। जैसे एक में कुत्ता, दूसरे में बिल्ली, तीसरे में हाथी, चौथे में बन्दर इत्यादि। सब जंगली जानवर सात शाखाओं में छांटे जा सकते हैं और ये सब शाखायें चढ़ते-चढ़ते घरेलू जानवरों तक पहुंचती है। जैसे लोमड़ी और भेड़िया प्रत्यक्ष कुत्ते की श्रेणी में है और यों ही सिंह, बाघ और चीते की शाखा प्रत्यक्ष घरेलू बिल्ली तक पहुंचती है। इस प्रकार वह पुंजजीव जो सौ सिंहों में जान डालता है जैसा कि कुछ देर पहले कहा गया है सम्भव है कि उन्नति करते करते किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कक्षा पर ऐसे पांच पुंजजीवों में बँट जायें, जिसमें से हर एक में बीस-बीस बिल्लियां हों।

पशु वनस्पति आदि हर एक सृष्टि में जीवप्रवाह को बहुत बड़ा काल (समय) लग जाता है। ऐसे एक कल्प के मध्य से हम अब कुछ ही आगे बढ़े हैं और अहंता या व्यक्तिकरण (मनुष्यता) की प्राप्ति साधारण हालत में किसी कल्प के अंत में ही हुआ करती है और हम अभी ऐसे एक कल्प के मध्य से कुछ ही आगे बढ़ पाये हैं। इसीलिये अभी अहंता (मनुष्यता) प्राप्त होने के लिये देश-काल अनुकूल नहीं है। जब कोई जानवर सामान्य कक्षा से बहुत आगे उन्नति कर लेता है तब उसको ऐसी अहंता की प्राप्ति हो जाती है, परन्तु ऐसे अवसर विरले देखने में आते हैं। इस सफलता के प्राप्त करने के लिये अवश्य है कि जानवर मनुष्य की निज संगत में रहे। यदि जानवर के साथ दयालुता का बर्ताव किया जाये तो उसमें अपने उपकार करनेवाले मनुष्य के लिये भक्ति सहित प्रेम उत्पन्न होता है और अपने उपकार के अभिप्राय के समझने और उसकी इच्छाओं को पहले से जानने की चेष्टा करने में उसकी तर्कशक्ति भी बढ़ती है। इसके सिवाय उस मनुष्य के हृदय के भाव और मन के विचार उस पशु पर सदा पड़ते रहते हैं और इससे उस पशु के मन और हृदय दोनों की उन्नति होती रहती है।

देश-काल अगर अनुकूल हो तो यह उन्नति इतनी बढ़ सकती है कि वह जानवर अपने पुंजजीव से सर्वथा छूटकर उसकी कक्षा से ऊंचा हो जाता है और इस पर उस पुंजजीव का वह अंश जो उस जानवर का जीव था। वह इस योग्य बन जाता है कि उस प्रवाह का पात्र हो सके, जो दैव के प्रथम स्वरूप अर्थात् शिव से निकलता है। अर्थात् जिससे मनुष्य बनते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले और दूसरे प्रवाहों से तो एक बड़ा झोंका सा आता है, जो हजारों या लाखों के समूह पर एक साथ लगता है। परन्तु यह तीसरा अर्थात् शिव का प्रवाह ऐसा नहीं है। यह तो हर एक को अलग-अलग लगता है, जैसे-जैसे वह इसके लेने के लिये तैयार होता जाता है। यह झोंका बुद्धि लोक तक तो पहले ही से उतर आता है, परन्तु इससे और नीचे नहीं उतरता, जब तक कि किसी पशु का जीव नीचे से ऊपर को इसके लेने के लिये नहीं उछले। मगर जब कभी किसी पशु का जीव इस प्रकार ऊपर को उछलता है तभी यह तीसरा प्रवाह उससे मिलने को कूद पड़ता है और तब उत्तम मन के लोक में एक जीवात्मा बन जाती है, अर्थात् ऐसी अहंता या व्यक्ति बन जाती है जो नित्य या सदा रहती है। सदा बनी रहने से केवल यहां यह अभिप्राय है कि वह अहंता तब तक बनी रहती है, जब तक कालान्तर में मनुष्य उन्नति करते करते इस अहंता को पार करके बाद में ईश्वर में न मिल जायें, जहां से वह आया था। पुंजजीव का वह अंश जो अभी तक पशु में बराबर जीव का काम दे रहा है, अब जीवात्मा के उत्पन्न होने के लिये स्वयं वाहन या शरीर बन जाता है और वह तीसरे प्रवाह की दैवी चिंगारी, जो ऊपर से इसमें आ जाती है, अब इसे चैतन्य करके इसमें रहने लग जाती है। यह कहा जा सकता है कि पुंजजीव पर उसकी क्रमोन्नति भर में ये चिंगारियां अपने अनुपादक लोक में बराबर मंडराती रहती हैं, जहां तक पुंजजीव का वह अंश जो इससे सम्बन्ध रखता है, इतनी उन्नति न कर ले कि चिंगारी उससे मिल सके। इस प्रकार किसी सबसे ऊंची कक्षा के पशु के जीव का अपने पुंजजीव के शेष भाग से अलग हो जाना और अलग अहंता उत्पन्न कर लेना ही वह क्रिया है, जिससे ऊंचे से ऊंचे जानवर और नीचे से नीचे मनुष्य में अन्तर रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. मनुष्य की बनावट

जैसा कि पहले कह आये हैं वैसे, मनुष्य असल में दैवी आग की एक चिंगारी है जो अनुपादक* लोक की है। जहां तक इस लोक में यह चिंगारी रहती है, वहां तक हम इसको ईश्वर का अंश (ईश्वरांश) कहते हैं। मनुष्य की उन्नति के लिये यह ईश्वरांश नीचे के लोकों में आकर प्रकट होता है। जब यह एक मंजिल उतरकर आत्मिक लोक में आ जाता है, तो वहां यह त्रिमूर्ति की भांति अपने आपको प्रकाशित

---

* सातों लोकों के नामों में प्रैसिडेन्ट (सभापति) ने सुविधे के लिये जो परिवर्तन हाल में की है वह नीचे दी है और इसके साथ ही हर लोक के अणु में जितने जितने असली बुदबुदे हैं सो भी सुभीते के लिये तीसरे अध्याय के पृष्ठ (२९-३०) के सम्बन्ध में यहां ही दिखला दिये गये हैं।

नं०	पुराना नाम	नया नाम	एक-एक अणुम बुदबुदों की गिनती
१	आदितल	दैवीलोक	(४९^{०}) = १
२	अनुपादकतल	ईश्वरांशिक लोक	(४९^{१}) = ४९
३	आत्मिक या निर्वाणिक ,,	अध्यात्मिकलोक	(४९^{२}) = २४०१
४	बुद्धिक ,,	बुद्धिक ,,	(४९^{३}) = ११७६४९
५	मानसिक ,,	मानसिक ,,	(४९^{४}) = ५७६४८०१
६	वासनिक ,,	वासनिक ,,	(४९^{५}) = २८२४७५२४९
७	भौतिक ,, या स्थूल	स्थूल ,,	(४९^{६}) = १३८४१२८७२०१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है और इसमें तीन स्वरूप होते हैं, जैसे अत्यंत ऊंचे लोक में ईश्वर के तीन रूप होते हैं। इन तीनों में से एक सदा आत्मिक लोक में ही बना रहता है, हम उसको मनुष्य की आत्मा कहते हैं। दूसरा बुद्धि लोक में प्रकट होता है, इसको हम मनुष्य की बुद्धि कहते हैं और तीसरा उत्तम मनलोक में प्रकट होता है, उसे हम मनुष्य की विचार-शक्ति कहते हैं। इन तीन स्वरूपों से मिलकर जीवात्मा बनती है, जो पुंजजीव के एक अंश को सजीव करती है। यों मनुष्य है तो असल में ईश्वरांश और अनुपादक लोक का रहनेवाला, परन्तु हमारे परिचय के अनुसार वह उत्तम मनलोक में जीवात्मा के रूप में प्रकट होता है और वहां अपने तीनों रूप (आत्मा, बुद्धि, मन) उस शरीर में होकर दिखाता है, जो उत्तम मनलोक के पदार्थों का बना हुआ है और जिसको हम विज्ञानमय कोष कहते हैं।

सृष्टि की क्रमोन्नति के मनुष्य विभाग में यह जीवात्मा ही मनुष्य है और साधारण बोली में जो आत्मा का अर्थ लिया जाता है उसका वास्तव में यह सबसे नजदीक का पर्याय है। अहंता प्राप्त होने के समय से लेकर मनुष्यता की कक्षा से पार होकर ईश्वर में मिल जाने तक यह बदलता नहीं है, अलबत्ता बढ़ता तो है। जिसको हम जन्म और मरण कहते हैं, उससे इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और जन्म से मरण तक के समय को हम साधारण में उसका जीवन (आयु) कहते हैं, उसके जीवन में मानो यह केवल एक दिन है। यह शरीर जिसको कि हम देख सकते हैं और जो पैदा होता और मरता है, वह मानो एक वस्त्र है, जिसको वह इसलिये धारण करता है कि उसकी उन्नति के किसी एक भाग का प्रयोजन सिद्ध हो।

यह अकेला शरीर नहीं है, जिसको वह धारण करती है। जीवात्मा उत्तम मनलोक से स्थूललोक के शरीर को धारण नहीं कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती, जब तक वह बीच के अधम मनलोक और वासना-लोक में होकर स्थूल लोक से अपना सम्बन्ध न कर ले। जब वह नीचे उतरना चाहती है, तब वह अपने चारों ओर अधम मनलोक के पदार्थ का घेरा बना लेती है और यह उसका मन शरीर कहलाता है। यही औजार है जिससे वह अपने स्थूल वस्तुओं का विचार कर सकती है, क्योंकि सूक्ष्म अर्थात् परामर्श विचार तो उत्तम मनलोक में बैठे हुए स्वयं जीवात्मा की ही शक्ति है।

फिर वह अपने चारों ओर वासना-लोक के पदार्थ को लेकर एक ओर घेरा बना लेता है, जो उसका वासना शरीर कहलाता है और यह उसके काम, क्रोधादि वासनाओं का औजार है, जो उसके मन शरीर के नीचले भाग से मिलकर ऐसा औजार बनता है, जिससे उसके ऐसे विचार सोचे जाते हैं जो स्वार्थपन और ममता से रंगे हुए हैं। इन बीच के वाहनों को धारण करने पर ही जीवात्मा किसी गर्भ में बच्चे के शरीर में आकर इस संसार में जन्म ले सकता है। वह जीवात्मा अपनी जिन्दगी में कर्मों और तजुर्बों से सद्गुण प्राप्त करती है और अपनी आयु के अन्त में स्थूल शरीर के बिखर जाने पर वह जिस क्रम से पहले उतरी थी, उससे उलटी चलने लगती है और अनित्य शरीरों को जिनको उसने धारण किया था, एक-एक करके उतार डालती है। सबसे पहले स्थूल शरीर माना गया है और जब यह उतर जाता है, तब उसकी जान वासना* लोक में आ जाती है और यह जीवात्मा अपने वासना शरीर में रहती है।

स्थूल लोक में जाते ही उसने जितना काम क्रोधादि वासनाओं को अपने में अधिक या कम बढ़ाने के अनुसार उसको अधिक या

* वासना लोक को भुवर्लोक भी कहते हैं, इसके नीचे के उपविभागों को प्रतलोक और ऊपर को पितृलोक कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम भुवर्लोक में ठहरना पड़ता है। अगर ये वासनायें अधिक हैं तो उसके वासना शरीर में प्रबल जान होगी और वह वासना शरीर बहुत दिनों तक ठहरेगा और अगर ये वासनायें कम होंगी तो उसके वासना शरीर में कम जान होगी और वह उसको जल्द ही उतार सकेगा। जब यह शरीर उतर चुकेगा तब जीवात्मा को यह आभास होगा कि मैं मनशरीर में रह रही हूं। उसको किस ढंग के विचारों का अभ्यास रहा है इससे उसके मनशरीर के पोढ़ेपन की अनुभूति होती है और बहुधा उसका मन:लोक (स्वर्ग) में ठहरना बहुत काल तक होता है, निदान उसके स्वर्ग में रहने का भी छोर आ जाता है और तब वह अपने मन:शरीर को भी उतार कर फेंक देता है और इसके पीछे वह जीवात्मा अपने को फिर अपने निज लोक (उत्तम मन:लोक) में होना अनुभव करता है।

उन्नति में कमी होने के कारण उसको इस उत्तम मनलोक में अभी बोध थोड़ा सा ही होता है। मनलोक के अणुओं के कम्पन इतने अधिक वेग से होते हैं कि ये उस जीवात्मा पर असर नहीं करते हैं, ठीक उसी रीति से जैसे सूरज की किरणों में से इन्द्रधनुष में लाल, नारंगी, पीली, हरी, आसमानी, नीली और बैंगनी रंग के आगे और भी रंगों की किरणें हैं, जो दिखायी नहीं पड़ती, क्योंकि वे इतने वेगवाली हैं कि हमारी आंखों पर नहीं गड़ती। इस उत्तम मनलोक में कुछ सुस्ता के उसे यह इच्छा होती है कि वह नीचे इतना उतरे कि जहां के कम्पनों का उसे परिचय होने लग जाये, जिससे उसको यह आभास हो सके कि वह पूरे तौर पर जीवित या जिन्दा है। यों वह फिर क्रम से अधिक से अधिक स्थूल पदार्थ में उतरती है और फिर नये सिरे से मन शरीर, वासना शरीर और स्थूल शरीर धारण कर लेती है। उसके पहले के शरीर एक एक करके सब बिखर चुके हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिये ये नये शरीर उनसे सर्वथा अलग है और इसी से यह बात है कि जीवात्मा को अपने पहले के स्थूल जीवन चरित्रों की इस स्थूल शरीर में कुछ भी याद नहीं रहता है।

इस स्थूल लोक की आयु में जो कुछ उसे याद आता है, वह मन-शरीर के द्वारा आता है, परन्तु यह शरीर नया है और केवल इस जन्म के लिये धारण किया गया है, इसलिये यह स्वत:सिद्ध है कि इसमें पूर्वजन्मों की याद नहीं रह सकती, क्योंकि उन जन्मों में इसका कोई संसर्ग नहीं था। स्वयं मनुष्य (उसकी जीवात्मा) को जब वह अपने निज लोक में होता है यह सब याद रहती है और कभी-कभी उसके पूर्वजन्मों की कुछ थोड़ी सी याद या उन जन्मों का कुछ असर उसके नीचे के शरीर में भी दिखायी देता है। उसको अपनी स्थूल आयु में अपने पूर्वजन्म के आचरणों की याद प्राय: नहीं रहा करती है, परन्तु उन आचरणों से जो गुण उसमें बढ़ा है, उनको वह अपने स्थूल जीवन में प्रकट कर देता है। इसी कारण हर एक मनुष्य ठीक वैसा ही होता है, जैसा उसने अपने को पिछले जन्मों में बना लिया है। पिछले जन्मों में अगर उसने अपने में सद्‌गुण बढ़ाया है तो अब भी उसमें सद्‌गुण होते हैं और अगर वह अपनी शिक्षा में असावधान या बेपरवाह रहा है और इससे अपने को निर्बल और बुरी प्रकृति का बना रहने दिया है तो अब भी वह अपने को इसी दशा में पायेगा। वे गुण, चाहे अच्छे हों या बुरे, जिनके साथ वह जन्म लेता है, वे ही हैं जिनको उसने स्वयं उत्पन्न किये हैं।

शरीरों के धारण करने के सारे क्रम का प्रयोजन यह है कि जीवात्मा का विकास हो। जिन तरंगों के प्रतिभास या सहानुभूति करने की इसमें योग्यता है, वे इसको इन शरीरों में ही होकर लग सकती है और इसीलिये यह प्रकृति के बंधनों को धारण करता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताकि उसकी गुप्त शक्तियां इस तरह उघड़ जायें। मनुष्य ऊंचे से इन नीचे लोकों में उतरता है परन्तु है यह केवल इस उतरने ही का फल। उसमें इन ऊंचे लोकों का पूरा ज्ञान शनैः-शनैः उत्पन्न होता है। किसी लोक का पूरा ज्ञान जब हो सकता है कि उस लोक के सब तरंगों के अनुभव करने का और उनसे सहानुभूति करने का सामर्थ्य हो। इसलिये साधारण मनुष्य को अभी तक पूरा ज्ञान किसी लोक का नहीं हुआ है, यहां तक कि वह समझता है तो यह है कि इस स्थूल लोक को मैं अच्छी तरह जानता हूं, परन्तु इसका भी उसे पूरा ज्ञान नहीं हुआ है। यह सम्भव है कि वह इन सब लोकों को जान लेने की अपने में शक्ति में वृद्धि कर ले और ऐसे ही बढ़ाई हुई शक्ति से हमने ये सब बातें देखी हैं, जिनका हम वर्णन कर रहे हैं।

कारण शरीर जीवात्मा का उत्तम मनलोक में नित्य रहने वाला शरीर है। यह उस लोक के पहले दूसरे और तीसरे उपविभागों की सामग्री से बना है। साधारण मनुष्यों में यह शरीर अभी तक पूरा चंचल नहीं हो पाया है, क्योंकि इसमें केवल यह अंश ही चैतन्य है, जो तीसरे उपविभाग का है जो अपनी उन्नति के दीर्घ क्रम में, जीवात्मा अपनी गुप्त शक्तियों को जैसे-जैसे उघाड़ता जाता है, वैसे-वैसे इस शरीर में ऊंचे उपविभागों के अंश धीरे-धीरे सचेत होते जाते हैं, परन्तु इस शरीर की पूर्ण विकास या पहुंचे हुए मनुष्य में होता है, जिसे हम महात्मा या ऋषि कहते हैं। ऐसे अंश दिव्यदृष्टि से वे लोग ही देख सकते हैं, जो जीवात्मा की दृष्टि से काम में लाना जानते हैं।

कारण शरीर का पूरा वृत्तांत करना कठिन है। क्योंकि उसके लोक की इन्द्रियों से सर्वथा अलग और ऊंची है। कारण शक्ति को देखकर दिव्यदृष्टि वाला जितनी उसकी शक्ल की स्मृति जाग्रत अवस्था में ला सकता है, उसके अनुसार यह शक्ल अंडाकार है, और मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साधारण अवस्था के स्थूल शरीर से लगभग डेढ़ फुट चारों ओर बाहर निकला हुआ होता है और खाली सा दिखायी पड़ता है। वह असल में उत्तम मन के पदार्थ से भरा हुआ तो है, परन्तु अभी यह चैतन्य नहीं हो पाया है। इसलिये अब भी यह शरीर बिना रंग का है, और इसमें आर-पार दिखायी पड़ता है। जैसे-जैसे उन्नति होती जायेगी वैसे-वैसे नीचे के शरीरों की जो तरंगे इसमें लगेंगी उनमें धीरे-धीरे चेष्टा आती जायेगी। यह क्रिया होती बहुत धीरे-धीरे है, क्योंकि उन्नति के नीचे के खंडों में मनुष्य के क्रिया-कलाप ऐसे नहीं होते कि उत्तम मन के शरीर की तरह सूक्ष्म अणुओं में इनका उभार हो सके, परन्तु जब मनुष्य उन्नति के उस खंड पर पहुंच जाता है, जहां वह या तो सूक्ष्म विचार या परोपकारी भाव करने लग जाये, तब कारण शरीर जाग जाता है और उनकी प्रतिभा झलकने लगती है।

जब इन लहरों के कम्पन मनुष्य में उभरते हैं तो वे उसके कारण शरीर में रंगों की शक्ल में दिखायी देने लगते हैं और इससे यह होता है कि जो कारण शरीर पहले केवल पारदर्शक बुलबुला था वह अब धीरे-धीरे अति सुहावने और मधुर रंगों के पदार्थ से भरा हुआ गोला बन जाता है और यह एक ऐसी सुन्दर वस्तु बन जाती है कि विचार से बाहर है। परीक्षा से मालूम हुआ है कि ये रंग अर्थसूचक हैं। वह कम्पन, जिससे निःस्वार्थ प्रीति की शक्ति की सूचना होती है, हल्का गुलाबी रंग सा दिखायी पड़ता है, ऊंची तर्कशक्ति का रंग पीला, सहानुभूति का रंग हरा और आसमानी रंग भक्तिभाव का और चटकीला नीला रंग ऊंची परमार्थ-निष्ठा की सूचना देता है। ये ही रंगों की सूची स्थूलतर शरीरों में लगती है, परन्तु क्रम से आते आते भूलोक में ये रंग बहुत मंद हो जाते हैं अर्थात् इनकी कोमलता और चटकीलेपन दोनों में कमी हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्नति के क्रम में नीचे लोकों में मनुष्य बहुधा अपने शरीरों में ऐसे गुण भर लेता है, जो बुरे और नेष्ट जीवात्मा के विकास के लिये सर्वथा प्रतिकूल हैं, जैसे कि अभिमान, चिड़चिड़ापन, विषयाशक्ति और गुणों की तरह इन बुरे गुणों के भी अलग-अलग कम्पन हैं, परन्तु ये सब अपने अपने लोकों में नीचे के उपविभागों के हैं और इसलिये कारण शरीर में इनका प्रतिभास या उभार नहीं हो सकता, क्योंकि कारण शरीर अपने लोक के केवल ऊंचे के तीन उपविभागों के पदार्थ का बना हुआ है। इसका कारण यह है कि वासना शरीर का हर एक विभाग मन-शरीर में अपने मिलते हुए विभाग पर बलपूर्वक प्रभाव डालता है और अपने मिलते भाग के सिवाय और किसी दूसरे भाग पर कुछ भी उसका प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये कारण शरीर पर वासना शरीर के ऊपर के तीन भागों का ही प्रभाव पड़ सकता है और इनकी तरंगें केवल सद्गुणों की सूचक होती है।

उपयोगी बात इसमें यह है कि मनुष्य अपनी जीवात्मा में अर्थात् अपने आप में सद्गुणों के सिवाय और कुछ नहीं भर सकता है, जो अवगुण वह अंगीकार करता है वास्तव में वे क्षणिक हैं अर्थात् सदा रहने वाले नहीं हैं। इसलिये जब वह आगे बढ़ता है तो ये अलग पड़ जाते हैं। क्योंकि उसमें ऐसे कोई अणु नहीं रहते कि जो इन अवगुणों को प्रकाशित कर सकें। जंगली मनुष्य और संत के कारण शरीरों में यह भेद होता है कि जंगली मनुष्य का तो रीता और बिना रंग का होता है, परन्तु संत का चमकीले दमकीले रंगों से भरा हुआ होता है। जब मनुष्य संत की कक्षा से भी आगे बढ़ जाता है और बड़ी अध्यात्म-शक्ति वाला बन जाता है तब उसका कारण शरीर आकार में बढ़ जाता है, क्योंकि उसे अब इतना अधिक भाव प्रकट करना पड़ता है और तब इसमें से तीव्र प्रकाश की बलिष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किरणें चारों ओर निकलती हैं। महात्मा पद या जीवन–मुक्ति प्राप्त होने पर इस शरीर का आकार बृहद हो जाता है।

मन–शरीर मनलोक के नीचे के चार उपविभागों के द्रव्य का बनता है और मनुष्य के स्थूल विचारों की इससे सूचना होती है। यहां भी रंगों की ऐसी ही सूची है जैसा कारण शरीर में था। रंग कुछ कम कोमल होते हैं और एक दो रंग अधिक भी होते हैं, जैसे अभिमान के विचार का नारंगी रंग दिखायी पड़ता है और चिड़चिड़ेपन का चमकता हुआ गुलनार (अनार) का रंग। यहां कभी कभी लालच का चटकीला किरमिची रंग और स्वार्थ का धुंधला किरमिची और कपट का धुंधला, हरा रंग दिखायी पड़ता है। यहां हम कई एक मिले हुए रंग भी देखते हैं। प्रीति, ज्ञान और भक्ति में स्वार्थ की झांई हो सकती है और अगर ऐसा हो तो उनके अलग–अलग रंगों में स्वार्थता का किरमिची रंग मिला होता है और इस कारण से ये रंग हमको अशुद्ध और गंदले दिखायी पड़ते हैं। मन शरीर के कण अपने आपस में सदा अत्यन्त तेजी से चलते रहते हैं तो भी इस शरीर की बनावट निरी बेडौल नहीं होती है।

मन–शरीर की लम्बाई–चौड़ाई और शक्ल का अनुमान कारण शरीर की लम्बाई–चौड़ाई और शक्ल से बांधा जाता है। मन–शरीर में कुछ धारियां होती हैं जिनसे इस मन–शरीर में फांके बन जाती हैं, जो थोड़ी या बहुत बेडौल होती हैं। इनमें से हर एक फांक का मस्तिष्क के किसी एक हिस्से या खण्ड से सम्बन्ध होता है और इसलिये हर एक जाति के विचार के सोचने की क्रिया, मस्तिष्क में अपने–अपने सम्बन्ध रखनेवाले खण्ड से होता है। मन–शरीर की वृद्धि साधारण मनुष्यों में अभी इतनी अधूरी है कि बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिनमें बहुत से ऐसे खण्ड जाग्रत नहीं हुए हैं और यदि किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे विचार के सोचने की चेष्टा करना हो कि जिसका सम्बन्ध किसी ऐसे बिना जगे हुए खण्ड से हो तो उसे घुमकर किसी ऐसे दूसरी अयुक्त नाली में होकर चलना पड़ता है जो पूरी खुली हुई मिल जाये। इसमें यह दोष रह जाता है कि ऐसे विषयों पर इन लोगों का विचार भद्दा और धुंधला होता है। यही सबब है कि कोई तो गणित में चतुर होता है, और कोई ठीक-ठीक जोड़ भी नहीं कर सकता तथा ऐसे ही कुछ लोग तो संगीत (गाना बजाना) को सहज ही में समझते हैं, उसका सम्मान करते हैं और उसमें रस (मजा) लेते हैं तथा कोई ऐसे होते हैं जो एक स्वर को दूसरे स्वर से भी नहीं पहचान सकते।

मन-शरीर के सब अणुओं के भली-भांति आपस में घूमते रहना चाहिये, परन्तु कभी कभी कोई मनुष्य किसी विषय पर अपने विचार को पक्षपात से जमा देता है तो इससे उस घूमने की गति में रोक हो जाती है और एक ऐसा जमाव हो जाता है कि जो कुछ देर में कड़ा होकर मन-शरीर पर एक मस्सा सा बन जाता है। ऐसा मस्सा हमको यहां दुनिया में पक्षपात के रूप में दिखायी पड़ता है और जब तक यह घुल न जाये और अणुओं का घूमना बेरोक टोक फिर न होने लगे, तब तक यह असम्भव है कि वह मनुष्य अपने मन के उस विशेष खण्ड के सम्बन्ध में ठीक-ठीक विचार कर सके या साफ-साफ देख सके, क्योंकि उस मस्सा के जमाव से तरंगों का भीतर से बाहर और बाहर से भीतर का स्वच्छंद आना जाना रुक जाता है।

जबकि कोई मनुष्य अपने मन-शरीर के किसी भाग को काम में लाता है तो वह भाग उस समय केवल तेज ही नहीं लहराता, किन्तु वह थोड़ी देर के लिये फूल जाता है और उसका आकार बढ़ जाता है। अगर किसी विषय पर बहुत काल तक विचार रहता है तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आकार की वृद्धि सदा के लिये बनी रहती है और इस रीति से हर एक मनुष्य को अधिकार है कि वह अपने मन-शरीर के आकार को चाहे उचित मार्ग में बढ़ाये, चाहे अनुचित मार्ग में।

अच्छे विचारों से मन-शरीर के सूक्ष्मतर अणुओं में कम्पन उत्पन्न होते हैं और ये अणु हल्के होने के कारण अंडाकृत मन-शरीर के ऊपर के भाग में तैरते रहते हैं और इसके विपरीत स्वार्थ और लालच जैसे बुरे विचार मन-शरीर के स्थूलतर अणुओं के कम्पन होते हैं और ये अणु उस अंडे के नीचे के भाग की ओर बैठने को झुकते हैं। साधारण मनुष्य बहुधा तरह-तरह के स्वार्थी विचारों के वश में हो जाता है, इसलिये उसके मन-शरीर के नीचे का भाग प्रायः फूला हुआ होता है और उसका आकार ऐसा दिखायी पड़ता है मानो एक अंडा है जिसकी बड़ी कोर नीचे है। जिस मनुष्य ने इस नीचे के विचारों को दबा लिया है और ऊंचे के विचारों को अपने में लगाया है, उसके मन-शरीर के ऊपर का भाग फूलने लगता है, इसलिये उसकी शक्ल ऐसे अंडे की सी होती है जो अपनी हल्की कोर पर खड़ा हो। मनुष्य के मन-शरीर के रंगों और धारियों को देखकर दिव्य दृष्टिवाला उसके सहज सुभाव को जान सकता है और यह कि उसने इस जन्म में कितनी उन्नति की है। कारण-शरीर की ऐसी ही बातों को देखकर वह यह भी देख सकता है कि पशुयोनि छोड़कर जब जीवात्मा बना था, तबसे अब तक किसी मनुष्य ने कितनी उन्नति की है।

जब कोई मनुष्य किसी पुस्तक, घर या वन इत्यादि स्थूल पदार्थ का विचार करता है तो उसके मन शरीर में उस वस्तु की एक नन्ही सी मूर्ति बन जाती है। वह मूर्ति उस शरीर के ऊपर के भाग में प्रायः उसके मुंह के साम्हने और कुछ कुछ आंखों के बराबर तैरती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहती है जब तक मनुष्य उस वस्तु का विचार या ध्यान करता रहता है तब तक और उसके पीछे भी प्रायः कुछ देर तक यह मूर्ति बनी रहती है और जितना विचार प्रबल और साफ होता है, उतनी ही देर तक पीछे से यह मूर्ति बनी रहती है। यह मूर्ति सचमुच बनती है और इसको कोई दूसरा मनुष्य भी देख सकता है, अगर उसने अपने मन शरीर की दिव्यदृष्टि उभार ली हो। जब कोई मनुष्य अपने मन में किसी दूसरे का विचार करता है तो इसी प्रकार उस सोचनेवाले के मन-शरीर में एक नन्हा सा चित्र बन जाता है, अगर उसका विचार केवल स्मरण मात्र ही है और उसमें राग या द्वेष अर्थात् प्रीति या ग्लानि किसी वासना या मिलने की इच्छा जैसे लालसा मिली हुई नहीं है, तो उस विचार का प्रायः प्रत्यक्ष संस्कार उस मनुष्य पर नहीं पड़ता है कि जिसका स्मरण किया गया है।

अगर किसी मनुष्य का ख्याल किया जाये और उसके साथ कोई प्रेम की या और किसी भांति का भावना मिली हुई है तो चित्र बनने के सिवाय एक और भी बात होती है। प्रीति का ख्याल, ख्याल करनेवाले के शरीर के द्रव्य में से एक विशेष शक्ल बना लेता है और उसमें वासना मिली हुई होने के कारण उसके चारों ओर उस मनुष्य के वासना-शरीर का द्रव्य भी खिंच आता है और इस भांति एक वासना और मानसिक द्रव्यों की मिश्रित शक्ल बन जाती है और यह जिस शरीर में बनी है, उससे बाहर उछल पड़ती है और आकाश में उस मनुष्य की ओर जाती है कि जो उस प्रेम का पात्र है। अगर यह ख्याल बहुत प्रबल है तो दूरी से इसमें कुछ भी अंतर नहीं पड़ता है, परन्तु ख्याल करने वाला अगर साधारण मनुष्य है तो उसका ख्याल प्रायः निर्बल और बिखरा हुआ होता है और इसी कारण कुछ दूरी से आगे इसका प्रभाव नहीं रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब यह विचारक (विचार की मूर्ति) अपने पात्र के पास पहुंच जाता है तो यह उसके वासना और मन शरीरों में छूट जाता है और अपने कम्पन की गति (रंग) उनमें लगा देता है। या यों कहें कि प्रेम का संकल्प जब एक मनुष्य से दूसरे की ओर जाता है तो इसमें कुछ शक्ति और कुछ पदार्थ दोनों साक्षात् भेजनेवाले से उठकर उस दूसरे के पास पहुँचते हैं और इस दूसरे मनुष्य पर जो इसका पात्र है इसका यह असर होता है कि इसमें भी प्रेम की भावना खड़ी होती है और सदा के लिये भी इसमें कुछ प्रेम की शक्ति बढ़ जाती है। ऐसे ख्याल से भेजनेवाले की प्रेमशक्ति भी पुष्ट होती है और इसलिये इससे भेजनेवाले और लेनेवाले दोनों को ही एक साथ लाभ होता है।

हर एक विचार या ख्याल से कोई न कोई आकार (शक्ल) बनता है, अगर ख्याल किसी दूसरे मनुष्य की ओर भेजा जाये तो यह शक्ल उसके पास चली जाती है और अगर यह ख्याल केवल स्वार्थ का हो तो उसी मनुष्य के पास बनी रहती है, जो इसका सोचनेवाला है। अगर यह इन दोनों में से एक भी प्रकार का नहीं हो तो यह शक्ल कुछ देर के लिये आकाश में तैरती रहती है और फिर धीरे-धीरे खिल जाती है। इसलिये मनुष्य जहां-जहां होकर निकलता है वहां वहां अपने विचार की शक्लों की खोज छोड़ता जाता है और जब हम किसी गली में होकर निकलते हैं तो मानो हम बराबर (पापचिह्न) की तरह दूसरे मनुष्यों के विचारों के समुद्र में चलते हैं। अगर कोई मनुष्य थोड़ी देर के लिये अपने मन को खाली कर ले तो दूसरों के बचे-बचाये विचार उसके खाली मन में होकर निकल जायो करते हैं और इनमें से बहुतों का तो केवल थोड़ा सा ही असर होता है, परन्तु कभी-कभी कोई ऐसा विचार का आकार (शक्ल) आ जाता है जो उसके ध्यान को खींच लेता है, जिससे उसका मन उसको ग्रहण कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेता है और उसको अपना लेता है तथा कुछ शक्ति अपनी उसमें मिलाकर उसे प्रबल बना देता है और फिर उसे बाहर फेंक देता है और यह फिर किसी दूसरे को लगता है। यों अगर कोई विचार तिरते तिरते किसी मनुष्य के मन में आ जाये तो इस विचार का उस पर भार (जवाबदेही) न होगा, क्योंकि यह विचार शायद उसका न हो, वरन और किसी का हो, अलबत्ता अगर वह इस संकल्प को स्वीकार कर ले और उस पर मनन करे और फिर उसको प्रबल करके बाहर भेज दे, तो इसका भार उस पर निःसन्देह होगा।

यदि कोई मनुष्य किसी प्रकार का अपने स्वार्थ का विचार करता है तो वह उसके चारों ओर घूमता रहता है और बहुत से मनुष्य अपने मन-शरीरों के चारों ओर ऐसे विचारों का एक कवच आवरण सा बना लेते हैं। ऐसे कवच से मानसिक दृष्टि धूमिल पड़ जाती है और इससे दुराग्रह सहज में ही बन जाता है।

हर एक विचारक कुछ समय के लिये एक प्राणी बन जाता है, वह एक भरी हुई बंदूक के समान होता है जो छूटने के लिये अवसर देख रही है। उसका स्वभाव यह है कि जिस मन-शरीर में वह लग जाये, उसमें अपने जैसे कम्पन उत्पन्न करे और यों उसमें अपने से मिलता हुआ ख्याल पैदा करे। अगर वह मनुष्य किसी काम में या किसी विशेष सोच-विचार में लगा हुआ हो तो उसके मन-शरीर के अणु पहले ही से विशेष और दृढ़ रीति से कम्पन करते हुए होते हैं और उन पर तत्क्षण बाहर से प्रभाव नहीं पड़ सकता है। ऐसी दशा में विचारक धीरज से अवसर मिलने की प्रतीक्षा करता है और उस मनुष्य के चारों ओर घुमता रहता है, जब तक कि वह इतना शांत न हो जाये कि यह उसमें घुस सके, फिर यह उस मनुष्य से छूट जाता है और छूटते ही नष्ट हो जाता हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अगर विचार स्वार्थ का हो तो वह ठीक ऐसा ही बर्ताव अपने उत्पन्न करने वाले से करता है और अवसर मिलने पर उस पर छूट जाता है। यदि यह स्वार्थ का विचार बुराई का है तो वह मनुष्य यह समझता है कि यह संकल्प किसी बहकाने वाले पिशाच का सुझाया हुआ है, यद्यपि असल में वह स्वयं अपने आपको बहका रहा है। प्राय: हर एक ख्याल अपना नया आकार (शक्ल) बनाता है, परन्तु यदि उससे मिलता हुआ कोई विचारक उस मनुष्य के चारो ओर पहले से घूम रहा हो और उस विषय का कोई नया ख्याल उसके मन में उठे तो इसका एक नया आकार नहीं बनता, वरन् इसका आकार पुराने आकार में मिलकर उसे प्रबल कर देता है और इस प्रकार किसी एक बात या विषय पर बहुत समय तक सोच विचार करते रहने से कभी-कभी अत्यन्त प्रबल विचारक बन जाता है। अगर विचार दुष्टता का हो तो ऐसा विचारक एक सचमुच दुष्ट शक्ति प्राणी बन जाता है जो शायद कई वर्ष तक बना रहता है और इसमें कुछ समय तक सचमुच प्राणधारी जीव की शक्ल व शक्तियां रहती हैं।

ये सब जिनका वर्णन ऊपर हुआ है, मनुष्य के साधारण विचार हैं जो पहले से सोचे विचारे नहीं गये हैं। मनुष्य जान-बूझ कर भी विचारक बना सकता है और उसको दूसरे पर उसकी सहायता के लिये छोड़ सकता है। जगत् की सेवा करने वाले जिन जिन परिपाटियों पर काम करते हैं, उनमें से एक यह भी है। यदि किसी मनुष्य पर प्रबल विचार की निरंतर धार चतुराई से डाली जाये तो यह उसको बहुत सहायता पहुंचा सकता है। प्रबल विचारक एक सचमुच रक्षा करनेवाला देवता बन जाता है और अपने पात्र को अपवित्रता से, क्रोध से या भय से रक्षा करता है। इस विषय की एक मनोरंजन शाखा यह है कि भांति-भांति की जाति के विचारक जो-जो शक्लें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और रंग धारण करते हैं, उनका अध्ययन किया जाये, रंगों से यह सूचना मिलती है कि विचार या ख्याल किस जाति का है और ये उन रंगों से मिलते हैं, जो हमारे शरीर में होते हैं और जिनका कि पहले वर्णन हो चुका है। शक्लें अनन्त प्रकार की होती हैं परन्तु इनकी बनावट के ढंग से किसी न किसी रीति से प्राय: यह दिखायी जाता है कि जिस विचार को ये प्रकट करता है, वह किस किस्म का है।

यदि विचार किसी विशेष ढंग का हो, जैसे प्रीति या घृणा का, भक्ति या शंका का, क्रोध या भय का, अभिमान या ईर्ष्या का तो इससे शक्ल ही नहीं बनती, वरन् उससे किरणों की भांति एक तरंग भी चारों ओर फैलती है। इस बात से इन विचारों में से हर एक किसी विशेष रंग से जाहिर होता है यह सूचना होती है कि विचार मन शरीर के किसी विशेष विभाग के द्रव्य के कम्पन के रूप में प्रकट होता है। यह कम्पन आस-पास के मनलोक के द्रव्य में ठीक उसी प्रकार लग जाता है। जैसे कि किसी घंटे के शब्द का कम्पन उसके चारों ओर की हवा में लग जाता है।

यह कम्पन का प्रसार सब ओर चलता है और जब कभी वह किसी दूसरे ऐसे मन-शरीर से लगता है जो शांत या अनुकूल अवस्था में हो, तो उससे इस मन-शरीर में भी उसका कम्पन कुछ न कुछ लग जाता है। विचार आकार से तो उसके विचार का साफ और पूरा अनुभव प्राप्त हो जाता है। परन्तु इससे ऐसा नहीं होता, इससे तो केवल उस विचार की जाति से मिलता हुआ एक और विचार पैदा हो जाता है। इसका उदाहरण यह है कि अगर विचार भक्ति का हो तो जिस-जिस के मन-शरीर में उसकी तरंगे लगेंगी, उसमें भक्ति का भाव तो पैदा होगा ही। परन्तु यह भक्ति हर एक में अपने अपने इष्टदेव के लिये होगी। इसके विपरीत विचारक तो केवल एक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य को पहुंचता है, परन्तु इससे उस मनुष्य (यदि वह अनुकूल अवस्था में है) को केवल सामान्य भक्ति का भाव ही नहीं प्राप्त होगा, किन्तु उसको उस देव की ऐसी मूर्ति का भी अनुभव हो जायेगा कि जिसकी पूजा की भावना प्रारम्भ में उस मनुष्य के मन में थी जिससे विचारक उत्पन्न हुआ था।

यदि कोई मनुष्य नित्य पवित्र अच्छे और दृढ़ विचारों का सोच विचार किया करता है, तो ऐसे करने में वह अपने मन-शरीर के ऊंचे हिस्से को काम में लाता है। साधारण लोगों में यह हिस्सा सर्वथा काम में नहीं आता और निरा मुँदा हुआ होता है। इसीलिये ऐसा मनुष्य संसार में भलाई का एक स्तम्भ है और उसके उन सब पड़ोसियों को उससे बहुत लाभ पहुंचता है, जिनमें नेकी के किसी प्रकार के भाव स्वीकार करने की योग्यता है। क्योंकि जो लहरें वह भेजता है, उनसे उनके मन-शरीरों का एक नया और ऊंचा भाग जागने लगता है और इसका यह फल होता है कि उनको सोच विचार करने को नये-नये विषय सूझने लग जाते हैं।

यह सम्भव है कि यह विचार उभरने पर ऐसा न निकले जैसा कि असल में भेजनेवाले के पास से चला था, अर्थात् उभरने पर उसमें कुछ हेर-फेर हो सकता है, परन्तु विचार की जाति नहीं पलटेगी। ब्रह्मविद्या पर विचार करने से जो तरंगे पैदा होती हैं, उनसे यह जरूरी नहीं है कि आस-पास के मनुष्यों में ब्रह्मविद्या के ही विचार फैंले। परन्तु इन तरंगों से उनमें पहले के देखते अधिक उदार और ऊंचे विचार निःसंदेह पैदा हो जायेंगे। इसके विपरीत जो विचारक ऐसे देशकाल में बनेंगे यद्यपि उनका असर तरंगों के असर से विस्तार में थोड़ा होगा, तथापि वे होंगे स्पष्ट। ये विचारक लगेंगे उन्हीं मनुष्यों को, जो कुछ न कुछ उनसे सानुकूल हैं, परन्तु इनसे उनमें ब्रह्मविद्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अलग-अलग विषयों पर स्पष्ट स्पष्ट भाव उत्पन्न होंगे। रंगों के वासना-शरीर में वैसे ही अर्थ होते हैं जैसे और भी ऊंचे शरीरों में, परन्तु ये उनसे कई सप्तक नीचे हैं और हमारे स्थूल लोक के रंगों से अधिकतर नजदीक मिलते हैं। वासना-शरीर हमारे काम क्रोधादि वेगों और भावनाओं का वाहन है, इसलिये इसमें ऐसे नये रंग भी दिखायी पड़ते हैं कि जो मनुष्य के नीच भावनाओं के सूचक होते हैं और जो ऊंचे लोकों में नहीं प्रकट हो सकते हैं। जैसे कि चमकीले किरमिची लाल रंग से विषयभोग की वासना की सूचना होती है और काले बादल, द्रोह और घृणा को जतलाते हैं। एक निराली भांत का ऊदा खाकी रंग भय को बताता है और अधिक काला भांति का खाकी रंग जो अण्डाकार के चारों ओर क्रम से भारी छल्लों के रूप में दिखायी पड़ता है, प्राय: उदासी दर्साता है। चिड़चिड़ापन वासना-शरीर में छोटे-छोटे गुलनार के रंग के छींटों से बताया जाता है और हर एक छींटा अलग-अलग क्रोध की एक छोटी लहर की सूचना करता है। जलन की सूचना एक निराले मटिया हरे रंग से होती है जिसमें कि वैसे ही गुलनार के छींटे प्राय: भरे हुए होते हैं। वासना-शरीर लम्बाई-चौड़ाई और शक्ल में उन शरीरों की तरह होता है, जिनका कि अभी वर्णन किया गया है और साधारण मनुष्य में इसकी शक्ल प्राय: कटी-छंटी होती है, परंतु जंगली मनुष्य के यह बहुधा बहुत ही बेडौल होती है और ऐसा दिखायी पड़ता है कि अधम गुणों के रंगों का चक्कर खाता हुआ बादल सा है।

यह वासना-शरीर यों तो असलियत में शांत कभी नहीं होता, परंतु जब थोड़ा बहुत शांत होता है तब जो रंग इसमें दिखायी पड़ते हैं वे ऐसी वासनाओं को दर्साते हैं, जिनका उसको अधिकतर व्यसन है। जब मनुष्य में किसी एक वासना का वेग आता है तो उस वासना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का कम्पन थोड़ी देर के लिये उसके शरीर भर में छा जाता है। जैसे अगर यह वेग भक्ति का हो तो, उसका सारा वासना-शरीर आसमानी रंग से तमतमाने लगता है और जब तक यह भावना प्रचंड बनी रहती है, तब तक साधारण रंग इस आसमानी रंग में केवल अपनी झाँई डाल देते हैं या उसमें होकर इनकी हल्की झलक दिखायी पड़ती रहती है, परन्तु थोड़ी देर में ही इस भावना का वेग शांत हो जाता है, और तब साधारण रंग फिर साफ दिखायी देने लग जाते हैं। परंतु वासना-शरीर का वह भाग जो साधारण में आसमानी होता है इस वेग से आकार में कुछ बढ़ जाता है। यों जिस मनुष्य में ऊंची भक्ति की भावना बहुधा रहा करती है उसके वासना-शरीर में नीले रंग का विस्तार सदा के लिये बढ़ जाता है।

जब भक्ति की भावना का वेग किसी मनुष्य पर आता है तो बहुधा उसके साथ भक्ति के विचार भी आते हैं, यद्यपि ये भक्ति के विचार असलियत में मानसिक शरीर में बनते हैं तो भी इनके चारों ओर वासना-लोक की बहुत सी सामग्री खिंच जाती है, जिससे इनका प्रभाव दोनों लोकों में रहता है, इन दोनों लोकों में कम्पन की वे किरणें भी होती हैं जिनका कि वर्णन पहले हो चुका है और वैसे भक्त मनुष्य भक्ति का एक केन्द्र बन जाता है तथा उसके विचार और वासनायें दूसरे लोगों को लगती रहती हैं और ऐसा ही असर प्रीति, क्रोध और उदासी में ही नहीं, सभी वासनाओं में भी होता है।

वासना के वेग का मन-शरीर पर अधिक असर नहीं पड़ता, परंतु थोड़ी देर के लिये इससे यह हो जाता है कि मन-शरीर से कोई क्रिया पार होकर स्थूल मस्तिष्क तक पहुंच नहीं सकती। इसका कारण यह नहीं है कि मन-शरीर पर कोई असर पड़ा है, वरन् यह है कि वासना-शरीर इस मन-शरीर और स्थूल मस्तिष्क के बीच में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दूसरे का संदेश भेजने के लिये पुल का काम करता है और अगर किसी वासना के वेग में एक होकर यह वासना-शरीर लहरा रहा हो तो उसमें कोई दूसरी लहर जो उस सुर के मेल की न हो, पार नहीं हो सकती। वासना-शरीर के स्थायी रंग मन-शरीर में भी लग जाते हैं। परन्तु मन-शरीर में जो रंग इनसे पैदा होते हैं, वे चमक में कई सप्तक ऊंचे होते हैं। यह ऐसी ही बात है कि जैसे किसी बाजे पर अगर कोई स्वर बजाया जाये, तो उसके ऊपर के सप्तकों का भी वही स्वर बजने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार मन-शरीर का असर भी कारण शरीर पर होता है और इस तरह सबके सब सद्गुण, जो नीचे के शरीरों में प्रकाशित होते हैं, वे जीवात्मा में सदा के लिये क्रम से जमते जाते हैं। दुर्गुण इस प्रकार नहीं जम सकते, क्योंकि इन गुणों के रंगों के कम्पन ऐसे हैं कि उत्तम मन के अणुओं में जिनके कारण शरीर बनता है, इनकी गति नहीं चल सकती है।

अभी तक हमने उन शरीरों का वर्णन किया है जिनके द्वारा अपने-अपने लोक में जीवात्मा का प्रकाश होता है। ये वे शरीर हैं जिनको जीवात्मा अपने आप बना लेती है, परन्तु स्थूल लोक में ऐसा शरीर होता है कि जो जीवात्मा के लिये उन नियमों के अनुसार प्रकृति बना देती है, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। ये शरीर भी एक तरह से जीवात्मा का प्रकाशक है, परन्तु इससे उसका पूर्ण प्रकाश नहीं होता। साधारण जीवन में हमें इस स्थूल (भौतिक) शरीर का केवल छोटा सा भाग (हाड़-मांस का) दिखायी देता है अर्थात् वह भाग जो भौतिक अणुओं से केवल ठोस और द्रव अणुओं का बनता है। भौतिक शरीर में तो सात प्रकार के अणु होते हैं और ये सबके सब भौतिक शरीर के जीवन में काम आते हैं और उस जीवन के लिये इन सब का गौरव बराबर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भौतिक शरीर का वह भाग जो अदृश्य है अर्थात् दिखायी नहीं पड़ता है, उसको हम प्राणमय कोष अर्थात् आकाशिक छायादेह कहते हैं। इसको छायादेह इस तरह कहते हैं कि आकार और शक्ल में यह ठीक उस स्थूल शरीर की सी है जिसको हम देख सकते हैं और इसको आकाशिक कहते हैं कि यह उस तरह के सूक्ष्मतर अणुओं का बना हुआ है कि जिसके कम्पन से प्रकाश आंख की पुतली तक पहुंचता है। (ये असली आकाशिक वायु अर्थात् मूल प्रकृति के अणु से अलग है कि जिसके अभाव का नाम तत्व है)* स्थूल शरीर का यह अदृश्य भाग हमारे बड़े काम का है, क्योंकि इसी में होकर प्राण की लहरें आती हैं जिनसे शरीर जीता है और यह हमारे विचार और वासना की लहरों को वासना-शरीर से स्थूल (दिखायी पड़ने वाले) भौतिक शरीर तक लाने में पुल का काम देता है और इसलिये इसके बिना जीवात्मा अपने सिर के भीतर के भेजे के ज्ञान-तंतुओं से काम नहीं ले सकती।

भौतिक शरीर के सदा बदलते रहने में ही उस भौतिक शरीर का जीवन है और इसके जीते रहने के लिये इसे तीन तरह के पोषण की निरन्तर चाहत रहती है। पहले इसको पचाने के लिये भोजन और दूसरे स्वांस लेने के लिये वायु और तीसरे चूसने के लिये प्राण चाहिये। यह प्राण असलियत में एक शक्ति है, परन्तु जब प्रकृति का बेठन इस पर चढ़ जाता है। तब यह हमको तत्त्वविशेष या परमाणु

* ऐसा माना गया है कि आदि में एक रस आकाश वायु सर्वत्र भरी हुई थी और जब सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा का प्रवाह आया तब उस वायु में पहले ही छोटे छोटे भंवर से पड़ गये और इन भवरों के बीच में खाली शून्य रहा और आसपास आकाशवायु बनी रही ये ही शून्य गर्भित भंवर अर्थात् आकाश के अभाववाले बुदबुदे आदि लोक के तत्त्व बने; फिर इनमें से बहुत बहुत से मिलकर नीचे लोकों के तत्त्व बनते गये जैसा कि पृष्ठ २, ३० और ६०) में लिखा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा दिखायी पड़ता है, जो उन सब लोकों में उनके परमाणुओं के रूप में पाया जाता है कि जिनका हम वर्णन कर आये हैं। इस समय हमारा प्रयोजन केवल प्राण के उस रूप से है, जो भूलोक के सबसे सूक्ष्म विभाग में पाया जाता है। जिस तरीके से लहू नाड़ियों में घूमता है, वैसे ही प्राणवायु तंतुओं (स्नायुओं) में बहता है और जैसे लहू के बहाव में यदि कोई विकार हो जाये तो भौतिक शरीर में तत्काल उसका असर हो जाता है, ठीक वैसे ही अगर प्राण के बहाव या चुसने की क्रिया में थोड़ी सी भी विषमता हो जाये तो उससे भौतिक शरीर के सूक्ष्म भाग (प्राणमय कोष) पर असर पड़ जाता है।

प्राण एक शक्ति है जो आदि में सूरज से निकलती है। जब सबसे अधिक सूक्ष्म भौतिक अणुओं में यह प्राण भर जाता है, तब वह अपने चारों ओर छः दूसरे अणु खींच लेता है और अपने को एक प्राण वायु का तत्त्व बना लेता है। प्राण की असली शक्ति के फिर सात विभाग हो जाते हैं और हर एक अणु में प्राण का अलग-अलग भार हो जाता है। यह तत्व जो इस प्रकार बना, तिल्ली के प्राणमय भाग में होकर मनुष्यों के शरीर में यह चुस जाता है। फिर वहां इसके अलग-अलग भाग हो जाते हैं और ये सातों प्राण इस स्थूल शरीर में अपने अपने नियमित भागों में अलग-अलग तत्काल बहकर आ जाते हैं। भौतिक शरीर के प्राणमय कोष में शक्ति के सात केन्द्र अर्थात् चक्र हैं और उनमें से एक तिल्ली भी है। हमारे सब शरीरों में हर एक में ऐसे सात केन्द्रों का चैतन्य होना आवश्यक है और जब ये चैतन्य हो जाते हैं तो वे दिव्य दृष्टि से दिखायी पड़ने लगते हैं। वे प्रायः उथले भँवर से दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि वे ऐसे बिंदु हैं कि जिनमें होकर ऊंचे (सूक्ष्म तर) शरीरों से निकली हुई शक्ति नीचे (स्थूल तर) शरीरों में आती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भौतिक शरीर में ये केन्द्र इस तरह हैं—(१) रीढ़ की पेंदी पर (मूलाधार) (२) सूर्यचक्र (नाभि पर) (३) तिल्ली पर (४) हृदय के ऊपर (५) कंठ पर (६) दोनों भवों के बीच में (भृकुटी) (७) सिर की चोटी पर। इनके सिवाय सोते हुए केन्द्र और भी हैं, परन्तु उनका जगाना अनुचित है।

सब ऊँचे (सूक्ष्मतर) शरीरों के आकार दिव्यदृष्टि से अंडाकृत दिखायी पड़ते हैं। परंतु जिस द्रव्य से ये बने हैं, वह इस अंडे में सब तरफ एक सा फैला हुआ नहीं है। भौतिक शरीर इस अंडाकार के मध्य में है। भौतिक शरीर भुवर्लोक के द्रव्य अर्थात् वासना या जलतत्त्व को जोर से खींच लेता है और इसी तरह वासना तत्त्व मनलोक के द्रव्य अर्थात् अग्नितत्त्व को जोर से खींच लेता है। इसलिये वासना-शरीर के द्रव्य का बहुत सा भाग स्थूल शरीर के भीतर इकट्ठा हो जाता है और ऐसी ही व्यवस्था मन-शरीर की है। अगर हम किसी मनुष्य के वासना-शरीर को उसके स्थूल शरीर से अलग वासना-लोक में ही देखें तो भी हमको वासनिक द्रव्य (अणु) इकट्ठे हुए ठीक स्थूल शरीर की शक्ल में दिखायी पड़ेंगे, परन्तु यह द्रव्य अधिक लचलचा है, इसलिये देखने में ऐसा लगता है कि अत्यन्त हल्के कुहरे के अंडाकार के बीच में गहरे कुहर का बना हुआ एक शरीर है। ऐसी ही व्यवस्था मन-शरीर की है। इसलिये वासना-लोक में या मन-लोक में अगर हमको कोई हमारी जान-पहचान का मिले तो हम उसकी शक्ल से उसको ऐसे ही तत्काल पहचान लेंगे, जैसे स्थूल लोक में।

यों मनुष्य की असली रचना इस तरह है कि पहले तो वह ईश्वर का अंश अर्थात् दैवी चिंगारी है। जीवात्मा एक अधूरा प्रकाश इसी ईश्वरांश का है और इसलिये प्रकट किया गया है कि वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(जीवात्मा) क्रमोन्नति की परिपाटी में आये और अपने संचित अनुभवों से जो सद्गुण पैदा हुए हों, उस कमाई को लेकर ईश्वरांश में लौटकर आनंद से मिल जायें। इसी अभिप्राय से जीवात्मा भी ऐसे ही अपने में से कुछ अंश नीचे लोकों में डालता है। इस अंश को हम ममता का स्वांग या कामात्मा कहते हैं, क्योंकि यह शरीर एक वेष है, जिसे जीवात्मा उस समय धारण करती है जब वह अपने निज लोक से नीचे लोकों में अपने को प्रकट करना चाहती है। ठीक जिस प्रकार जीवात्मा ईश्वरांश का एक छोटा अंश और अधूरा प्रकाश है, उसी प्रकार जीवात्मा क़ा यह कामात्मा भी एक छोटा अंश और अधूरा प्रकाश है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिसको हम साधारण तरीके में मनुष्य समझते हैं वह असलियत में केवल एक टुकड़े का टुकड़ा है।

यह कामात्मा तीन शरीर या वाहन धारण करती है, एक-मानसिक, दूसरा-वासनिक और तीसरा-भौतिक। जब तक मनुष्य इस स्थूल पृथ्वी पर जीता है और जागता रहता है, तब तक वह अपने स्थूल शरीर से बंधा हुआ है, क्योंकि वह अपने वासनिक और मानसिक शरीरों को तो अपने स्थूल शरीर से मिलने के लिये केवल पुलों की तरह काम में लाता है। स्थूल शरीर के दोषों में से एक यह है कि वह जल्द थक जाता है और इसको समय समय पर आराम करने की जरूरत होती है। हर रात को मनुष्य सोने में इस स्थूल शरीर को छोड़ देता है और अपने वासना शरीर में हट जाता है। यह वासना-शरीर थकता नहीं है और इसलिये उसे नींद नहीं चाहिये। स्थूल शरीर की इस नींद में मनुष्य वासना-लोक में चाहे जब चल फिर सकता है, परन्तु कितनी अधिक उसकी उन्नति हो चुकी है, उतना ही वह दूर जा सकता है। सिर्फ जंगली मनुष्य प्रायः अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोते हुए स्थूल शरीर से कुछ मीलों से अधिक दूर नहीं जा सकता, बहुत करके तो इतना दूर भी नहीं जा सकता और यहां उसका बोध भी अत्यन्त मन्द होता है।

पढ़ा लिखा मनुष्य तो वासना-शरीर में प्रायः जहां चाहे वहां जा सकता है और वासना-लोक में उसे बोध भी बहुत अधिक होता है, परन्तु अपने स्थूल शरीर के सोते हुए जो कुछ उसने देखा या किया है उसकी याद जागने पर बनाये रहने की शक्ति प्रायः उसमें नहीं होती है। कभी-कभी कोई बात जो उसने सोते में देखी या की हो या उस पर बीती हो उसको याद भी रह जाती है और तब यह जोर का स्वप्न कहलाता है। बहुधा तो उन बातों की मंद सी याद जो जागते हुए की हों और वे बातें जो भेजे के प्राणमय भाग पर बाहर से खुबी हों, सपने की मंद याद से ऐसी घुलमिल जाती है कि वह अलग नहीं हो सकती। यही कारण है कि साधारण सपने घुलमिल और प्रायः वे जोड़ होते हैं। उन्नत मनुष्य वासना-लोक में भी उतना ही पूरा सचेत और उद्योगी हो जाता है जितना भूलोक में, और जो कुछ वासना-लोक में वह करता रहता है, उसकी पूरी-पूरी याद भूलोक में ले आता है। अर्थात् दिन-रात के चौबीस घंटों में उसकी चेतना लगातार बनी रहती है और उसका बोध कभी जाता नहीं रहता है और इसलिये यही व्यवस्था उसकी जन्म भर ही नहीं, किन्तु मरने पर भी बनी रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६. मौत के बाद

मौत स्थूल शरीर के उतार डालने को कहते हैं, परन्तु ऊपर का वस्त्र उतार डालने से स्थूल मनुष्य में जितना भेद पड़ता है उससे अधिक भेद जीवात्मा में मौत से नहीं पड़ता। स्थूल शरीर उतार डालने के पीछे जीवात्मा अपने वासना-शरीर में तब तक रहता है, जब तक कि वह शक्ति खर्च न हो जाये जो उसके ऐसी वासनाओं व काम, क्रोधादि वेगों से उत्पन्न हुई हैं, जिनको उसने अपने जीते जी सेवन किया है। जब यह शक्ति खर्च हो चुकती है, तब दूसरी मौत होती है और वासना-शरीर भी उससे उतर जाता है और उसे यह जान पड़ता है कि वह मन शरीर में और नीचे के मनलोक में जी रहा है। वह इस अवस्था में उस समय तक बना रहता है जब तक कि वे विचार शक्तियां जो उसके भूलोक और वासना-लोक के जीवन में उत्पन्न हुई हैं, खिल न जायें। इसके पीछे वह अपने तीसरे शरीर को भी छोड़ देता है और जीवात्मा रहकर अपने कारण शरीर में निवास करता हुआ अपने निजलोक में बना रहता है।

इसलिये ऐसी मौत जैसी कि साधारण लोग मानते हैं, कोई वस्तु नहीं है। जीना अखंडित है और उसमें केवल क्रम से अवस्थायें बदलती हैं और ये अवस्थायें तीन लोक में एक के पीछे दूसरी भोगी जाती हैं। जैसे-जैसे मनुष्य उन्नति में बढ़ता जाता है वैसे ही इन तीनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकों में जितने जितने समय तक वह रहता है, उनमें परिवर्तन होता जाता है। जंगली मनुष्य प्रायः निरन्तर भूलोक में जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि हर स्थूल जीवन के अन्त में वह केवल थोड़े ही से वर्ष वासना-लोक में रहता है। जैसे-जैसे वह उन्नति करता जाता है, वैसे ही उसकी वासना-लोक में जीवन की अंवधि बढ़ती जाती है और जैसे जैसे उसमें समझ खिलती जाती है और सोचने विचारने की योग्यता होती जाती है वैसे ही वह मनलोक में भी कुछ कुछ समय व्यतीत करने लगता है। सभ्य जातियों में से साधारण मनुष्य स्थूललोक और वासना-लोक से मनलोक में अधिकतर समय तक रहता है। सच तो यह है कि मनुष्य जितनी जितनी उन्नति करता जाता है, उतनी ही उसकी जीवन की अवधि मनलोक में बढ़ती जाती है और वासना-लोक में घटती जाती है।

वासना-लोक की जीवन अवस्था उन सब वासनाओं का नतीजा है, जिनमें स्वार्थ का अंश होता है। अगर ये वासनाएं सिर्फ स्वार्थ की हों तो वे उसको वासना-लोक में बड़ी क्लेश या दुःख की दशा में डालती है, अगर वासनाएं भलाई और नर्मी की हों तो उनमें स्वार्थ का टांका होते हुए भी उनसे मनुष्य को वासना-लोक में कुछ सुख मिलता है, परन्तु यह थोड़े समय के लिये होता है। मनलोक (स्वर्ग) की जीवन अवस्था उन विचारों और वासनाओं का परिणाम है, जिनमें स्वार्थ का लेशमात्र नहीं हो। इसलिये मनलोक के जीवन में केवल आनन्द ही आनन्द हो सकता है। वासना[१] लोक की जीवन अवस्था मनुष्य अपने लिये या तो दुःख की बना लेता है या थोड़े बहुत सुख की और यह वह है जिसको ईसाई मतवाले पापमोचन

१. इसके दो भाग हैं जिनमें से नीचेवाले को प्रेत अवस्था और ऊपरवाले को पितृ अवस्था कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान कहते हैं। अधम मानसिक लोक का जीवन सदा अखंड सुख का है और यह स्वर्ग कहलाता है।

मनुष्य अपने पापमोचन (प्रेत अवस्था और पितृ अवस्था) और स्वर्ग स्वयं ही बनता है और ये स्थान नहीं हैं। किन्तु मनुष्य के मन या चेतन की दशायें हैं। नर्क (अनन्त) कहीं नहीं है, यह तो केवल पादरियों की मन की गढ़ी हुई मिथ्या कल्पना है, परन्तु यदि किसी मनुष्य की रहन-सहन मूढ़ता (बेवकूफी) की हो तो इससे उसको ऐसी प्रेत अवस्था मिलेगी जो बहुत दुःख बहुत दिनों तक चलेगी। न तो प्रेत अवस्था सदा रहने वाली है और न स्वर्ग, क्योंकि यह नहीं हो सकता है कि नियत या अंतवाले कारण से अनन्त फल उत्पन्न हो सके। मरने के बाद इन लोकों में अलग-अलग मनुष्यों को जो समय व्यतीत करना पड़ता है, उन समयों में इतना अधिक अंतर होता है कि यदि इनकी अवधि की कोई संख्या नियत की जाये, तो वह ठीक नहीं निकलेगा। यदि हम बीज की कक्षा के नीचले भाग के सामान्य मनुष्य को लें, जैसा छोटा दूकानदार या किसी दूकान का नौकर तो उसके जीवन की सामान्य अवधि प्रायः वासना-लोक (प्रेतलोक पितृलोक) में चालीस वर्ष और मनलोक (स्वर्ग) में दो सौ वर्ष के लगभग होगी। परंतु परमार्थी और पढ़े लिखे मनुष्य को शायद बीस वर्ष वासना-लोक में और हजार वर्ष स्वर्ग में लगेंगे और जो मनुष्य विशेष उन्नति कर चुका हो तो वासना-लोक में शायद उसे थोड़े से दिन या घंटे ही लगेंगे, परंतु स्वर्ग में निवास पन्द्रह सौ वर्ष तक रहेगा।

इन दिनों लोकों की अवधियों के समय में ही केवल अंतर नहीं होता, किन्तु उनकी व्यवस्था में भी बहुत भेद होता है। जिस द्रव्य के ये सब शरीर बने हुए हैं, वह मरा हुआ द्रव्य नहीं है, परंतु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानदार है। स्थूल शरीर कणों का बना हुआ है और इनमें से हर एक कण एक अलग नन्हा प्राणधारी है कि जिसमें दूसरे प्रवाह से उत्तेजना है जो ईश्वर के दूसरे स्वरूप अर्थात् विष्णु से निकलता है। ये कण कई तरह के होते हैं जो कई प्रकार के काम करते हैं तथा अगर मनुष्य चाहे कि वह भौतिक शरीर की क्रिया को समझ जाये एवं इस शरीर में निरोगी रहने लगे तो उसे ये सब बातें ध्यान में रखना चाहिये।

यही बात वासना शरीर और मन-शरीर में कही जा सकती है। कणमय प्राण, जो इन शरीरों में व्याप्त है, उनमें अभी तक विचार शक्ति या समझ या अकल का लेशमात्र नहीं है, परन्तु इन कणों में जानवरों का सा तीखा सहज बोध (पैदायशी हैवानियत) होता है, जो इनको सदा उन्नति की ओर अग्रसर करता है। इन शरीरों के अणुओं में जो जान है वह सृष्टि रचना के दूसरे अर्थात् (विष्णु) के प्रवाह के उस हिस्से की है जो नीचे उतरती हुई क्रम से अणुओं में पैठती जाती है, इसलिये इसकी उन्नति इसी में है कि गाढ़े से गाढ़े द्रव्य के रूपों में वह उतरती जाये और उनमें होकर अपने को प्रकट करना सीखे। मनुष्य की उन्नति ठीक इससे उलटी है। वह पहले द्रव्य में गहरा पैठ चुका है और अब उसमें से निकल कर उस स्रोत की ओर को चढ़ रहा है कि जहाँ से यह आदि में आया था। इसी कारण मनुष्य के भीतर की जीवात्मा में और उस प्राण में जो उन कणों में रहता है कि जिससे उसका शरीर बना है उसमें लगातार विरोध रहता है, क्योंकि इस प्राण की प्रवृत्ति नीचे उतरने की है और जीवात्मा की प्रवृत्ति ऊपर चढ़ने की है।

वासना-शरीर के द्रव्य को या यों कहें कि वह प्राण जो उसके कणों में है, उन्नति के लिये ऐसे कम्पनों की चाहत है जो जहां तक हो सके अधिक से अधिक तरह के और नीचे से नीचे या स्थूल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार के हों। वासना-शरीर के इस कणमय प्राण की उन्नति में आने का क्रम यह होगा कि वह प्राण अब स्थूल कणों में प्रवेश करे और उनके मंदतर कम्पनों से परिचित हो जाये और स्थूल पदार्थ में प्रवेश होने के लिये इसको नीच से नीच वासनिक कम्पनों की चाहत होती है। इस कणमय प्राण में ऐसा साफ बोध तो है नहीं, जिससे इस मतलब के लिये वह प्रबन्ध रच सके, परंतु वह अपने सहज स्वभाव से इतना जान लेता है कि इन कम्पनों को प्राप्त करने की सुगम से सुगम कौन सी रीति है।

स्थूल शरीर के कणों की तरह वासना-शरीर के कण भी सदा बदलते रहते हैं परंतु ऐसा होते हुए भी इन वासनिक कणों के समष्टि (इकट्ठे समूह) में जो प्राण या जीवन शक्ति होती है उसमें अपने पिंड का बोध होता है अर्थात् उसको यह ज्ञान होता है कि मैं भी कुछ समय के लिये एक प्रकार का जीवधारी हूँ, परन्तु यह ज्ञान अत्यंत भ्रम सा होता है। इस जीवधारी को यह ज्ञान नहीं होता है कि मैं किसी मनुष्य के वासना-शरीर का एक टुकड़ा हूँ, यह इस बात को सर्वथा नहीं समझ सकता है कि मनुष्य क्या वस्तु है, परंतु उसे ऐसा भ्रम सा होता है कि आकाश में खुले घुमने में जो कम्पन उसे मिलता है, उनकी अपेक्षा इस हाल के देश-काल में उसे बहुत और तीक्ष्णतर मिल जाते हैं। आकाश में घुमने में तो इसे मनुष्य के काम क्रोधादि वेगों और वासनाओं के कम्पनों की किरणें दूर से आकर कभी-कभी अकस्मात् ही लग सकती है, परंतु अब तो यह उन किरणों के ठीक बीच में है, इसलिये अब ये किरणें उससे बिना लगे रह नहीं सकती और ये उसको लगती भी जोर से है। इसलिये इसे यह देश काल अच्छा मालूम होता है और वह यह यत्न करता है कि यह देशकाल बना रहे। इसे यह जान पड़ता है कि मैं किसी ऐसी वस्तु से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगा हुआ हूं जो मुझसे सूक्ष्मतर है अर्थात् मनुष्य के मन-शरीर के कणों से और इसे यह ज्ञान होने लगता है कि अगर मैं किसी यत्न से इन सूक्ष्मतर वस्तुओं में भी अपने कम्पन लगा सकूं तो मेरे कम्पन बहुत तेज और बहुत ठहरने वाले हो जायेंगे।

वासनिक कण इच्छा के वाहन होते हैं और मानसिक कण सोच विचार के वाहन होते हैं, इसलिये इस वासनिक कण समष्टि के प्राण के स्वाभाविक ज्ञान को अगर हम अपनी साधारण बोली में वर्णन करें, तो यों कहा जायेगा कि अगर वासना-शरीर हमको यह मनवा दे कि जो कुछ उस शरीर की जरूरत है वह हमारी ही जरूरत है, तो उसकी इच्छा पूरी होने की अधिक संभावना हो जायेगी। इस प्रकार इससे मनुष्य पर एक हल्का दबाव बराबर रहता है, यह इसको तो भूख सी जान पड़ती है। परन्तु मनुष्य को यह किसी नीच और अनुचित बात के लिये फुसलाने वाला लालच लगता है। अगर मनुष्य क्रोधी स्वभाव का हो तो उसमें इसकी प्रेरणा (दबाव) निरन्तर चिड़चिड़ेपन की ओर रहेगी, अगर वह विषयी हो तो वैसी ही निरन्तर प्रेरणा अपवित्रता की ओर रहेगी।

जो मनुष्य इस बात को नहीं समझता है वह या तो यह मान लेता है कि यह प्रेरणा मेरे निज के स्वभाव की है और इसलिये यह विचार करने लगता है कि स्वभाव स्वतः ही पापमय है, या यह मान लेता है कि यह प्रेरणा बाहर से किसी ने की है अर्थात् किसी मन कल्पित शैतान ने लुभाया है, ये दोनों कल्पनाएं भूल की हैं। सच्ची बात इन दोनों के बीच की है। यह प्रेरणा स्वाभाविक तो है, परन्तु मनुष्य के स्वभाव की नहीं। किन्तु मनुष्य के शरीर के स्वभाव की है, ऐसी इच्छा करना शरीर के लिये स्वाभाविक भी है और उचित भी है, परन्तु यह मनुष्य के हानिकारक है और इसलिये यही आवश्यक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि मनुष्य इसे रोके। अगर वह इसे यों रोकेगा अर्थात् अगर वह उन वासनाओं के आधीन बनने से इंकार करे जो कि उसको सुझाई गई हों तो उसके शरीर में वे कण जिनसे उन कम्पनों की आवश्यकता थी पोषण न मिलने के कारण सुस्त हो जाते हैं और अन्त में मुरझा जाते हैं और वासना-शरीर से छिटककर गिर जाते हैं और इनकी ठोर (स्थान) में दूसरी भांति के कण आ जाते हैं जिनका कम्पन उस कम्पन से अधिकतर मिलता है जो मनुष्य अपने वासना-शरीर में स्वाभाविक होने देता है।

जीते जी मनुष्य की नीच प्रकृति से जो प्रेरणायें उठती हैं, यह उनका समाधान है। अगर मनुष्य इनके अधीन हो जाता है तो यह बहकाव अधिक से अधिक प्रबल होती जाती हैं, यहां तक कि अन्त में उसे यह जान पड़ता है कि वह इनको रोक न सकेगा और इनके साथ तन्मय हो जाता है और यही ठीक वह बात है जो वासना-शरीर के कणों की यह अद्‌भुत अधूरी जीवनशक्ति उससे कराना चाहती है।

स्थूल शरीर के मरने पर यह वासना-शरीर की अधूरी जान अपनी मन्द समझ से घबरा जाता है। इसे यह जान पड़ता है कि इसकी अलग व्यक्तिगत स्थिति ही जोखम में है और अपने बचाने और जहां तक हो सके अपना पद बनाये रखने के लिये वह सहज स्वभाव से कोशिश करता है। वासना शरीर का द्रव्य इस स्थूल शरीर के द्रव्य से अधिकतर ढुलढुला है और यह (वासनिक) बोध वासनिक शरीर के कणों को पकड़ लेता है और उनको ऐसे ढंग से स्थापित कर देता है, जिससे बाहर के धक्कों को रोक सके। यह सबसे अधिक गाढ़े कणों को तो बाहर छोड़ पर रखकर अपनी रक्षा के लिये एक तरह की सीप (निरा बकतर) बना लेता है और बाकी कणों को इस सीप के भीतर पुट दर पुट लगा लेता है कि जिससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका शरीर उतना रगड़ रोकनेवाला हो जाये जितना उसमें गुंजाइश है और वह अपनी इस शक्ल को जहां तक हो सके बनाये रखे।

इस पुट दर पुट शक्ल बनने से मनुष्य के लिये कई बुरी बातें उत्पन्न होती हैं। वासना-शरीर व इस स्थूल शरीर की बनावट में बड़ा फर्क होता है। स्थूल शरीर के बाहर की वस्तुओं का ज्ञान कोई कोई अंगों द्वारा होता है, जो इन्द्रियों के विशेष विशेष औजार बन गये हैं, परंतु ऐसी अलग-अलग इन्द्रियां वासना-शरीर में नहीं है। वासना शरीर में दृष्टि के बदले की, कणों की वह शक्ति है कि जिससे इनसे मिलते हुए कणों के बाहर से आघातों (धक्कों) का उत्तर दिया जाता है। जैसे दृष्टान्त यह है किसी मनुष्य के उसके वासना-शरीर में वासना-लोक के सब उपविभागों (हिस्सों) के कण हैं और इसी कारण से वह उन सब वस्तुओं को देख सकता है जो इन विभागों में से किसी न किसी कणों से बनी हुई है।

कल्पना करें कि कोई वासनिक वस्तु वासना-लोक के उत्तर के दूसरे और तीसरे उपविभाग के मिले हुए कणों से बना है तो वासना-लोक में रहनेवाला कोई मनुष्य उस वस्तु को जब ही देख सकेगा, जब उसके वासना-शरीर की सतह पर उस लोक के दूसरे और तीसरे उपविभाग के ऐसे कण हों जो कि उन कम्पनों को जो उस वस्तु से निकलते हों, ले सके और रख सकें। जिस मनुष्य के वासना-शरीर के भ्रमितबोध ने उसके वासना-शरीर के कणों की वह रचना कर ली है जिसका वर्णन हो चुका है और इस कारण से जिसके वासना-शरीर पर बाहर की ओर सतह पर सबसे नीचे विभाग के गाढ़े से गाढ़े कण स्थापित हो गये हैं उसको उस वस्तु का बोध नहीं हो सकता, जिसका ऊपर जिक्र हुआ है। ठीक जैसे कि हमको हमारे स्थूल शरीर में उन हवाओं का बोध नहीं होता हमारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आस-पास हमारे वायुमंडल में फिरती है और न उन पदार्थों का होता है जो केवल आकाश वायु के कणों से बने हुए हैं।

स्थूल जीवन अवस्था में (जीते जी) मनुष्य के वासना-शरीर का द्रव्य सदा चलित रहता है और उसके कण एक दूसरे के बीच में होकर बहुत कुछ ऐसे निकलते रहते हैं, जैसे उबलते हुए पानी के कण। इसी कारण किसी क्षण भी यह प्रायः निश्चय से कहा जा सकता है कि उसके वासना-शरीर की सतह पर बाहर की ओर सब प्रकार के कण मिलेंगे और इसलिये जब कि वह नींद में अपने वासना-शरीर को काम में लायेगा तो यदि कोई वासनिक वस्तु उसके पास आवे तो वह उसे दिखायी पड़ जायेगी।

मरने के पीछे अगर वह अपने वासना-शरीर के कणों की नई यातनिक रचना हो जाने देगा जैसा कि अपने अज्ञान के बस साधारण मनुष्य हो जाने देते हैं तो उसकी दशा इस विषय में पृथक होगी। इससे तो वासना-शरीर की सतह केवल नीचे से नीचे और गाढ़े से गाढ़े कण होंगे, इसलिये इसको बाहर से केवल इनसे मिलते हुए कणों का ही बोध हो सकता है। इस कारण से इसको अपने आस पास का सारा वासना-लोक नहीं दिखायी पड़ेगा, किन्तु इसे इस लोक का केवल सबसे नीचा सातवां हिस्सा दिखायी पड़ेगा और वह भी सबसे गाढ़ा और सबसे अपवित्र। इन भारी कणों के कम्पन केवल (बुरी) वासनाओं और वेगों की और वासना-लोक के निवासियों में से नीचे से नीचे जीवों की सूचना करते हैं। इससे यह बात निकलती है कि इस दशा में मनुष्य वासना-लोक के केवल बुरे निवासियों को तो देख सकता है और केवल अति नेष्ट और असभ्य वासनाओं का बोध कर सकता है। उसके चारों ओर दूसरे मनुष्य होते हैं जिनके कि वासनिक शरीर शायद निरे साधारण दर्जे के होते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, परन्तु उसको तो इन मनुष्यों की वे ही बातें मालूम या दिखायी पड़ सकती हैं, जो सबसे नीची और असभ्य हैं और इसलिये उसको ये मनुष्य केवल बुराइयों से भरे हुए ऐसे राक्षस से दिखायी पड़ते हैं कि जिनमें भलाई का लेशमात्र भी न हो। उसके मित्र भी उसको वैसे दिखायी नहीं पड़ते, जैसे कि पहले दिखायी पड़ा करते थे, क्योंकि इसको अब उनके अच्छे गुणों के पहचानने की सामर्थ्य नहीं रही है। इसलिये इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि वह वासना-लोक को नर्क समझ लेता है। परन्तु यह दोष उसका ही है, न कि किसी रीति से वासना-लोक का कि एक तो उसने अपने शरीर में उस नीच प्रकार के कण इतने अधिक रहने दिये, दूसरे उसने अपने वासना-शरीर के भ्रमित बोध को अपने ऊपर अधिकार जमा लेने दिया और वासना-शरीर के कणों की नवीन यातना-शरीर की सी रचना उस विशेष रीति से हो जाने दो।

इन विषयों को जिस किसी ने पढ़ा है, वह जीते जी वासनिक शरीर के लुभाने में नहीं आता है और न मरने पर अपने वासना-शरीर के कणों की रचना के क्रम में फेरफार होने देता है और इसलिये देखने की शक्ति उसको वासना-लोक के केवल मलिन और नीच भाग की ही नहीं होती, किन्तु सारे वासना-लोक की।

वासना-लोक में कई बातें भूलोक से मिलती हुई हैं। भूलोक की तरह अलग-अलग लोगों को और एक ही मनुष्य को भी उसके जीवन में अलग-अलग समयों पर इसके अलग-अलग रूप दिखायी पड़ते हैं। यह वासनाओं और नीच विचारों का घर है और इस लोक में वासनायें भूलोक से भी अधिक प्रबल होती हैं। जब कोई मनुष्य जागता हो तब हम उसकी वासना का वह अधिकतर भाग सर्वथा नहीं देख सकते, क्योंकि वासना की शक्ति भेजे के स्थूल कणों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलित करने में चली जाती है। इसलिये अगर हम यहां (भूलोक) में देखे कि कोई मनुष्य प्रेम दिखला रहा है तो हमें उसके प्रेम का पूरा रूप नहीं दिखायी पड़ता है, परन्तु प्रेम का केवल उतना भाग दिखायी पड़ता है जो इस सारी क्रिया के करने के पीछे बाकी रह जाता है। इसलिये वासनायें वासना-लोक में स्थूल लोक से अति विशाल दिखायी पड़ती हैं। अगर ये वासनायें बस में रखी जायें तो ऊंचे विचारों को किसी प्रकार नहीं रोकती हैं इसलिये भूलोक की तरह वासना-लोक में भी मनुष्य चाहे पढ़ने लिखने के अभ्यास में और अपने साथियों की सहायता करने में लगे और चाहे अपना समय वृथा खोयें और व्यर्थ घुमता रहे।

चन्द्रमा के घूमने के घेरे की मध्यम दूरी, जितनी यहां से है लगभग उतनी दूर तक वासना-लोक यहां से फैला हुआ है और वासना-लोक के निवासियों में से जिस किसी ने अपने वासना शरीर के कणों की रचना में हेर-फेर नहीं होने दिया है, उसके लिये यह सबका सब वासना-लोक खुला रहता है, परन्तु बहुत से लोग तो पृथ्वी के पास ही बने रहते हैं। वासना-लोक के अलग-अलग उपविभागों के कण आपस में एक दूसरे के बीच में बिना रोक टोक के पैठे हुए हैं, परन्तु इन सबमें सामान्य रीति से यह स्वभाव पाया जाता है कि कण जितने ही अधिक गाढ़े हों उतने ही पृथ्वी के केन्द्र के नजदीक बैठ जाते हैं। यह व्यवस्था प्राय: वैसी ही है जैसे एक डोल गंदे पानी में होती है कि जिसमें कई प्रकार के हल्के भारी कण भरे हुए होते हैं और पानी जब तक घूमता रहे तब तक ये सब प्रकार के कण डोलभर में फैले हुए रहते हैं। परन्तु इस पर भी, गाढ़े से गाढ़े कण अधिकतर तली के अत्यन्त नजदीक ही पाये जायेंगे। यों यद्यपि हमें यह तो सर्वथा नहीं विचार करना चाहिये कि वासना-लोक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब उपविभाग प्याज के छिलकों के पुटों की तरह एक के ऊपर एक रखे हुए हैं, तो भी यह बात सच है कि उन उपविभागों के कणों की मध्यम रचना का क्रम कुछ कुछ इस ढंग का है।

वासनिक कण भौतिक कणों के बीच में ठीक ऐसे पैठे हुए हैं मानो भौतिक कण कहीं है ही नहीं, परन्तु हर उपविभाग के भौतिक कणों को उससे मिलते हुए उपविभाग के वासनिक कणों से बड़ा आकर्षण (कशिश) है। इसलिये यह देखा जाता है कि हर भौतिक वस्तु के वासनिक प्रतिरूप (नकल) भी होता है। अगर एक प्याला पानी का तिपाई पर रखा जाये तो प्याला और तिपाई तो ठोस भौतिक कणों के हैं। इसने उनमें सबसे नीचे उपविभाग के वासनिक कण पैठे हुए हैं। प्याले में जो पानी है वह तरल है इसलिये उसमें वासना-लोक के वे कण पैठे हुए हैं कि जिनको हम वासनिक़ तरल कह सकते हैं। अर्थात् वासना-लोक के छठें उपविभाग के कण और हवा जो इन दोनों के चारों ओर है। वायुरूप के भौतिक कणों की है और इसलिये उसमें वासना-लोक के वायु के कण अर्थात् वासना-लोक के पांचवें उपविभाग के कण पैठे हुए हैं।

परन्तु जैसे हवा, पानी, प्याला और तिपाई इन सबमें भौतिक लोक के वे सूक्ष्मतर कण बराबर पैठे हुए हैं, जिनको कि हम आकाशवायु कहते हैं, ठीक वैसे ही इन वासनिक प्रतिरूपों में वासना-लोक के ऊपर के उपविभाग के सूक्ष्मतर वासनिक कण पैठे हुए हैं जो भौतिक उपविभागों के आकाश-वायु के मेल के हैं। परन्तु वासना-लोक का ठोस कण भौतिक लोक के सूक्ष्म से सूक्ष्म आकाश-वायु से भी हलका होता है।

मरने के पीछे भुवर्लोक (वासना-लोक) में पहुंचने पर अगर किसी मनुष्य ने अपने वासना-शरीर के कणों की रचना के क्रम में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेर-फेर नहीं होने दिया हो तो उसको स्थूल लोक से केवल थोड़ा सा ही अन्तर जान पड़ेगा। वह जिधर को चाहे उधर को उड़ तो सकता है, परंतु वह प्राय: उस जगह के आस-पास ही बना रहता है कि जहां वह मरने से पहले रहा करता था। वह अब भी अपने घर को, अपने कमरे को, अपने सामान को अपने नातेदारों को और अपने मित्रों को देख सकता है। जीते हुए मनुष्य अगर वे ऊंचे लोकों को नहीं जानते हैं यह समझ लेते हैं कि उनसे वे लोग जाते रहे हैं जिन्होंने अपने स्थूल शरीरों को छोड़ दिया है। परन्तु जो मर गये उन्हें एक क्षण के लिये भी यह अनुभव नहीं होता कि जो जी रहे हैं, वे उनसे खो गये हैं।

मरे हुए मनुष्य वासना-शरीर में रहते सहते हैं। इसलिये उन्हें उन लोगों के स्थूल शरीर नहीं दिखायी पड़ते, जिनको वे जीते छोड़ आये हैं। परंतु इन जीते हुओं के वासना शरीर तो उनको दिखायी पड़ते हैं और यह वासना-शरीर शक्ल में ठीक स्थूल शरीर जैसे होते हैं इसलिये इन मरे हुओं को अपने मित्रों के अपने पास होने का पूरा पूरा ज्ञान रहता है। उनको हर एक मित्र के चारों ओर घिरा हुआ एक हल्का चमकदार कुहर का अंडा सा दिखायी पड़ता है और अगर वे छान बीन करने वाले हों तो उन्हें अपने आस-पास की वस्तुओं में कुछ और भी परिवर्तन दिखायी पड़ने लगता है, परंतु इतना तो उन्हें ठीक से पता हो जाता है कि वे किसी दूर के स्वर्ग या नरक में तो नहीं चले गये हैं, किन्तु उसी लोक (दुनिया) में बने हुए हैं, जिससे वे परिचित हैं। यद्यपि उन्हें यह भासने लगता है कि वे देखते तो उसे किसी दूसरी निगाह से हैं। मरा मनुष्य अपने जीते हुए मित्र का वासना-शरीर छोड़े हुए अपने सामने देखता है, इसलिये यह विचार नहीं कर सकता कि वह मित्र खो गया है। परंतु जब यह मित्र जागता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ हो तो मरा हुआ मनुष्य उस पर कोई असर नहीं कर सकेगा, क्योंकि तब उस मित्र का चेतन भूलोक में है और उसका वासना-शरीर केवल एक पुल की तरह काम में आ रहा है। इस कारण मरा हुआ मनुष्य अपने मित्र के साथ न बातचीत कर सकता है और न उसके ऊंचे विचारों को पढ़ सकता है, किंतु वह उसके वासना-शरीर के रंगों के परिवर्तन से अपने उस मित्र के किसी वासना को जान सकता है और थोड़े से अभ्यास और छान-बीन करने से वह सहज में ही अपने मित्र के उन सब विचारों का पढ़ना सीख सकता है, जिनमें स्वार्थ या वासना का लगाव हो।

जब मित्र सो जाता है तो यह सारी अवस्था बदल जाती है। तब तो मित्र भी वासना लोक में मरे हुए मनुष्य के साथ ही साथ (चैतन्य) हो जाता है और ये हर एक बात आपस में ऐसे ही अच्छी रीति से कर सकते हैं, जैसे वे दोनों जीते जी कर सकते थे। जीते मनुष्यों की वासनायें उन मरे हुओं के जोर से लगती है, जो उनको प्यार करते हैं। अगर जीते हुए मनुष्य शोक करने लगे तो मरे हुओं को निःसंदेह बहुत दुःख होता है।

मरने के पीछे जो दशायें होती हैं, वे इतनी तरह की होती हैं कि जिनकी प्रायः गिनती नहीं हो सकती। परंतु किसी एक मनुष्य की मरने के पीछे क्या दशा होगी यह बात सहज में हर कोई बता सकता है जो वासना-लोक के समझने और उस मनुष्य के सुभाव को जांचने का परिश्रम उठावे। इस स्वभाव में मरने से कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। मनुष्य के विचार काम, क्रोधादि वेग और इच्छायें ठीक वैसी ही बनी रहती हैं, जैसा पहले थीं। वह ज्यों का त्यों वही मनुष्य बना रहता है जो वह पहले था, केवल उसका स्थूल-शरीर चल गया है और उसके सुख या दुःख का निर्णय (जांच) इस बात से होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि उसके स्थूल शरीर का बिछुड़ना उसे कितना अखरा है। अगर इसकी लालसायें ऐसी थी, जिनके पूरे होने के लिये स्थूल शरीर चाहना पड़े तो उसे बहुत दुःख सहना पड़ेगा। ऐसी लालसा से वासना-शरीर में कम्पन हुआ करता है और जब तक हम इस लोक (स्थूल लोक) में रहते हैं, तब तक इस कम्पन का बहुत सा बल स्थूल शरीर के भारी कणों को हिलाने में खर्च हो जाता है। इसलिये स्थूल लोक (की अपेक्षा) से वासना-लोक (प्रेत-पितृ-लोक) में लालसा अत्यन्त अधिकतर प्रबल होती है और अगर मनुष्य को वासना वश में रखने का अभ्यास नहीं हुआ हो और वह लालसा ऐसी हो कि इस नई प्रेत या पितृ अवस्था में पूरी न हो सकती हो तो इससे उसको बहुत दिन तक बड़ी तकलीफ रहेगी।

इसको समझने के लिये एक घोर शराबी या विषयी का दृष्टान्त लें। उसकी विषय वासना ऐसी है जो जीते जी इतनी वेग से रही है कि उसने बुद्धि विवेक और लज्जा तथा घर के स्नेह के भावों को दबा लिया है। मरने पर वासना-लोक में इस मनुष्य को ये वासना प्रायः सौ गुणी अधिक तेज व्यापेगी, परंतु वह इसको कुछ भी पूरी न कर सकेगा। क्योंकि उसका स्थूल शरीर नहीं रहा है। ऐसी अवस्था सचमुच नर्क ही है और अगर कोई नर्क है तो यही है। परंतु उसे दण्ड कोई दूसरा नहीं दे रहा है, वह तो अपने ही कर्म का स्वाभाविक फल भोग रहा है। धीरे-धीरे जैसे समय बीतता जाता है, वैसे ही इस वासना का बल कम होता जाता है। परन्तु इसमें उसको भयानक कष्ट होता है, क्योंकि उसे एक- एक दिन हजार वर्ष सा जान पड़ता है। समय का अनुमान जैसा कि हमको स्थूल लोक में होता है, वैसा उसको नहीं होता। वह तो समय को केवल अपने वेदनाओं से माप सकता है। इसी बात को तोड़-मोड़ कर यह पाखण्ड खड़ा कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिया गया है कि दंड निरन्तर नर्क का भी होता है कि जिससे कभी छुटकारा नहीं हो सकता।

इससे कुछ कम दर्जे के बहुत से दृष्टांत सहसा विचार में आ सकते हैं कि जहां लालसा पूरी नहीं हो सकती है, वहां उससे अत्यन्त कष्ट होता है। एक साधारण दृष्टान्त उस मनुष्य का है, जिसमें कोई मुख्य अवगुण शराबी या विषयी तो नहीं है। परन्तु वह सर्वथा इस दुनिया की वस्तुओं में लगा रहा है और उसका जीवन धंधों में या सामाजिक व्यर्थ व्यवहारों में बीता है। ऐसे मनुष्य का वासना-लोक में मन नहीं लगता है, जिन वस्तुओं की उसे लालसा है वे यहां उसके लिये असम्भव है, क्योंकि वासना-लोक में करने के लिये कोई भी धन्धा नहीं है और यद्यपि साथी तो जितने वह चाहे मिल सकते हैं, परंतु समाज की परिपाटी अब उसको अनमेल लगती है। क्योंकि जिन-जिन बहानों से समाज के व्यवहार दुनियां में प्रायः चलते हैं वे अब असम्भव हो गये हैं।

ऐसी दशा थोड़े ही मनुष्यों की होती है, बहुत करके तो मरने के पीछे की दशा जीते जी की अपेक्षा अधिक सुख की हो जाती है। मरने के पीछे पहले ही पहल मनुष्य को इस बात का आभास होता है कि मुझे अत्यन्त अद्‌भुत और आनंद देनेवाली आजादी है। उसे किसी बात की भी चिंता नहीं रहती है और उन कामों को छोड़कर, जो उसने अपने आप अपने ऊपर लिये हों और किसी काम का बोझ उस पर नहीं होता है। बहुत ही थोड़े मनुष्यों को छोड़कर सभी को पृथ्वी पर जन्म भर ऐसे कामों के करने में समय बिताना पड़ता है कि जिनको बस चलते वे नहीं करते। परंतु ये उसको अपने, अपनी स्त्री और कुटुम्ब को पालन करने के लिये करने पड़ते हैं। वासना लोक में कोई सहायता नहीं चाहनी पड़ती है, न तो भोजन चाहना पड़ता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और न कपड़े, क्योंकि गर्मी और सर्दी कुछ भी नहीं लगती और हर एक मनुष्य केवल अपनी कल्पना से जैसे चाहे वैसे कपड़े सजा लेता है। मनुष्य का बचपन से लेकर यही पहला अवसर है कि उसे पूरी स्वाधीनता मिली है कि वह अपना सारा समय ठीक उसी काम में लगाये, जिसमें उसका मन लगे।

उसके हर एक प्रकार के भोग भोगने की शक्ति बहुत बढ़ जाती है, अगर वह भोग ऐसा हो कि उसके भोगने के लिये स्थूल शरीर न चाहना पड़ता हो। अगर वह संसार के सुहावने दृश्य का रसिक है तो वह तुरन्त ही बिना थके संसार भर में घूम कर उसके सुन्दर से सुन्दर स्थान देख सकता है और उसकी गूढ़ से गूढ़ गुफाओं को ढूंढ़ सकता है। अगर वह चित्रादि कलाओं का रसिक है तो सारे जगत् के बढ़िया चित्र उसके सम्मुख है। अगर वह गाने बजाने का प्रेमी है तो उसके सुनने को वह जहां चाहे वहां जा सकता है और अब गाने बजाने के गौरव को वह पहले की अपेक्षा बहुत अधिक जानने लगेगा, क्योंकि स्थूल शब्द तो उसे अब नहीं सुनाई पड़ेंगे, परन्तु गाने बजाने के पूरे गुणों का अनुभव अब उसको स्थूल लोक से कहीं बढ़कर होगा। अगर वह पदार्थ विद्या का अभ्यासी है तो वह संसार के बड़े बड़े विज्ञानियों के पास जाकर उनसे ऐसे-ऐसे विचार और सिद्धान्त ले सकेगा, जो उसके लिये सुगम हों। यही नहीं, वरन् इस ऊंचे लोक की पदार्थ विद्या में वह अपने आप भी नई नई बातें निकाल सकेगा, क्योंकि अब उसको इस काम में इतना दिखायी पड़ता है कि पहले कभी सम्भव नहीं था। सबसे अच्छा वह है जिसको इस संसार में सबसे बड़ा आनन्द मनुष्य मात्र की सेवा करने में होता था। उसको परोपकार करने के लिये बहुत अवकाश मिलेगा। सम्भव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस वासना-लोक में लोगों को न भूख लगती है न सर्दी और न रोगों से पीड़ा होती है। परन्तु ऐसे बहुत से हैं जो अज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञान के अभिलाषी हैं अर्थात् जो अब भी संसार की वस्तुओं के मोह में फंसे तो हैं परन्तु उनको ऐसे ज्ञान की चाहत है जिससे उनके विचार सुधर जायें या यों कहो, बहुत ऐसे हैं कि जिन्होंने अपने कपोल कल्पित विचारों के जंजाल में अपने आपको फंसा रखा है और उससे उनको छुटकारा वह ही दिला सकता है जो कि इन नये देश कालों को जानता हो और इनको यह समझा सके कि इस संसार की बातें यथार्थ में तो क्या है और अपने मन में उनको भ्रम से ये क्या समझ रहे हैं। यदि कोई मनुष्य कोमल हृदय का और चतुर हो तो वह इन सबकी सहायता कर सकता है। बहुत से लोग वासना-लोक में जब आते हैं तो यहां की कोई भी बात नहीं जानते और न उनको पहले पहल यह जान पड़ता है कि वे मरे हुए हैं और जब उन्हें मर जाने का निश्चय हो जाता है तो उन्हें यह डर लगता है कि अब न जाने हम पर क्या क्या बीतेगी, क्योंकि उन्होंने पाखण्डियों की झूठी और बुरी बातें सुन रखी हैं। इन सबको धीरज और शांति की जरूरत है और ये उनको वह ही साधारण बुद्धिवाला मनुष्य दे सकता है, जिसको सृष्टि की यथार्थ बातों का कुछ बोध हो।

इसीलिये यदि जीते जी किसी मनुष्य के व्यवहार ठीक-ठीक रहे हों तो उसको न तो उपकारी कामों की कमी है और न साथियों की। वे मनुष्य जिनके भाव (शौक) और व्यवहार एक से हैं, स्वत: ही वहां भी इकट्ठे हो जाते हैं, जैसे यहां और बहुत से लोक जो जीते जी हमारे स्थूल शरीर के गाढ़े पर्दे से ढके हुए रहते हैं अब उघड़ जाते हैं और जो कोई चाहें वे इनकी व्योरेबार छान-बीन कर सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत करके तो लोग अपने आस पास का देशकाल अपने आप बना लेते हैं। हम इस वासना-लोक के सात उपविभागों की थोड़ी सी बात पहले कह चुके हैं। अगर हम सबसे ऊंचे और सूक्ष्म उपविभाग से नीचे की ओर को गिनती करें तो यह पाया जाता है कि इन सबके तीन दर्जे हैं—पहले[१] में तो पहला, दूसरा और तीसरा उपविभाग है दूसरे दर्जे[२] में चौथा पांचवां और छठां और तीसरे दर्जे[३] में अकेला सबसे नीचे वाला सातवाँ है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं ये सब एक दूसरे में पैठे हुए हैं परन्तु उनके कणों का यह साधारण स्वभाव है कि अपने अपने हल्के भारी पन के उतार चढ़ाव के अनुसार उनकी रचना क्रम से एक दूसरे के ऊपर हो जाती है जिससे यह होता है कि ऊंचे के उपविभागों के कणों के अधिकतर पुंज नीचे के उपविभागों के कणों के पुंज से धरती के ऊपर अधिकतर ऊंचाई या दूरी पर है।

इसलिये यद्यपि वासनिक-लोक में रहनेवाला कोई मनुष्य उसके किसी भाग में जा सकता है तो भी सहज स्वभाव वह उस लोक में उसी दर्जे पर तिरता रहता है जहां के कण भारीपन में उन कणों के बराबर हैं जो कि उस मनुष्य के वासना-शरीर में सबसे भारी हैं। जिस मनुष्य ने मरने के पीछे अपने वासना-शरीर के कणों की रचना के क्रम में फेर फार नहीं हो जाने दिया है अर्थात् जिसने यातना शरीर नहीं बनने दिया है वह सारे वासना-लोक में सब जगह फिर सकता है, परंतु बहुत से लोग जो ऐसा परिवर्तन हो जाने देते हैं (यातना शरीर बन जाने दिया है) वे इस प्रकार स्वाधीन नहीं है और इसका यह कारण नहीं है कि इनके ऊंचे से ऊंचे दर्जे तक चढ़ने में या नीचे से नीचे दर्जे तक उतरने में कोई वस्तु रोकनेवाली है। परंतु

१. पितृलोक। २. प्रेत लोक। ३. नर्क।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका केवल यही कारण है कि वे इस लोक के केवल किसी एक भाग का ही अनुभव अच्छी तरह कर सकते हैं।

मैं इसका कुछ वर्णन कर चुका हूं कि उस मनुष्य की क्या दशा होती है जो कि सबसे नीचे दर्जे पर गाढ़े-गाढ़े वासनिक-लोक के कणों को पोढी सीप या कवच के भीतर बंद है। ये सीप के कण वासनिक-लोक के और सब कणों से अत्यन्त गाढ़े हैं, इसलिये वह अपने उपविभाग के बाहर की बातों को दूसरे दर्जों के मनुष्यों से बहुत कम जानता है। इसका वासनिक शरीर सब मिलकर भारी होता है और इसलिये वह वासना-लोक के उस भाग में तिरता है कि जो धरती के भीतर है। पृथ्वी के कण उसकी वासनिक इन्द्रियों के सर्वथा जानने में नहीं आते हैं और उसका स्वाभाविक लगाव उन मोटे से मोटे वासनिक कणों से है जो कि ठोस पृथ्वी के वासनिक प्रतिरूप हैं। जिस मनुष्य ने कि अपने को वासनिक लोक के इस नीचे से नीचे उपविभाग में बांध रखा है, उसको प्रायः यह जान पड़ेगा कि वह अंधेरे में तैर रहा है और उन दूसरे प्रेतों से बहुत करके घिरा हुआ है जिनके जीवन चरित्र ऐसे रहे हैं कि जिससे वे वासना-लोक की ऊंची कक्षा में रह सकें।

वासना-लोक के चौथे, पाँचवें और छठें भाग वे हैं जिनमें सबसे अधिक लोग जाते हैं और इन भागों से लगे हुए इस पृथ्वी के और इस पृथ्वी के ऊपर की जानी बूझी सब वस्तुओं के प्रतिरूप होते हैं। वासनिक लोक के छठें भाग में जीवन दशा हमारी इस पृथ्वी पर जो साधारण मनुष्यों की दशा है, वैसी ही है केवल भेद यह है कि वहां स्थूल शरीर नहीं होता है और न उन वस्तुओं की जरूरत होती है। जो स्थूल शरीर के लिये चाहनी पड़ती है और जैसे जैसे कि मनुष्य पाँचवें और चौथे भाग में चढ़ता जाता है, उसका शरीर सूक्ष्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हल्का होता जाता है और उसका मन नीचे का पृथ्वी और उसके व्यवहारों से हटता जाता है।

पहले दूसरे और तीसरे भाग (पितृलोक) होते तो उसी ठौर में हैं, जहां के चौथे, पांचवें होते हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इनकी अपेक्षा ये पृथ्वी के ऊपर अधिकतर ऊंचे और उतने ही अधिक सूक्ष्म हैं। जो मनुष्य इन भागों में रहते हैं उन्हें पृथ्वी और उसकी वस्तुएं नहीं दिखायी पड़तीं, वे प्रायः अपने आप में ही निमग्न (गर्क) रहते हैं और बहुत कर अपनी संपत्ति अपने आप बना लेते हैं और जो वस्तुएं यों बनाई जाती हैं वे इतनी प्रत्यक्ष होती हैं कि उसी भाग के सब निवासियों को और दिव्यदृष्टि वालों को भी दिखायी पड़ सकता है।

यह वह लोक है कि जिसको भूत विद्यावाले स्वर्ग कहते हैं अर्थात् वह लोक जिसमें मरे हुए लोग अपनी विचारशक्ति से ही अपने घर, पाठशाला, नगर आदि कुछ काल के लिये बना लेते हैं, यह सम्पत्ति यद्यपि हमें कपोल कल्पित लगती है तो भी उन मरे हुए लोगों को तो यह ऐसी सचमुच जान पड़ती है। जैसे घर, मंदिर, गिरजे, पत्थर के बने हुए हमको दिखायी देती हैं और बहुत से लोग तो वहां वर्षों तक अपनी इन मन कल्पित रचनाओं के बीच में बहुत प्रसन्नता से बने रहते हैं।

इनमें से कोई रचना तो अति सुन्दर होती है। उसमें सुहावना सरोवर, विशाल पर्वत, रमणीक फुलवारियां तो ऐसी हैं कि भूलोक में कोई भी उनसे नहीं लगतीं, परन्तु इनमें ऐसी भी बहुत सी बातें हैं कि जिनको देखकर चतुर और अभ्यासी दिव्यदृष्टि वाले को हँसी आती है। जैसे कि अपने-अपने धर्म की पुस्तकों में जो-जो अद्भुत चिह्न अलंकार के रूप में दिये हुए हैं उनकी शक्लें अनपढ़े लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने मन की कल्पना से रचने का कोशिश करते हैं। एक मूर्ख किसान ऐसे पशु की शक्ल बनाता है कि जिसके भीतर आंखें ही आंखें भरी हों या कांच के ऐसे समुद्र जिसमें आग भरी हुई हो। ये शक्लें प्राय: चौड़े ही कुरूप लगती हैं परन्तु उनके बनानेवाले को वे सर्वथा ठीक लगती हैं। ये वासनिकलोक ऐसे मनकल्पित शक्लों और दृश्यों से भरा हुआ है। सब मतों के लोग अपने अपने देवताओं की और अपने मत के अनुसार अपने अपने स्वर्ग की शक्लें रच लेते हैं और इन स्वप्न की सी रचनाओं में बहुत प्रसन्न रहते हैं। यह व्यवस्था तब तक ही रहती है जब तक कि ये लोग स्वर्ग में न चले जायें और वहां जाने से असली तत्व के नजदीक न आ जाये।

साधारण मनुष्य उसे समझना चाहिये कि जिसके मरने के पीछे वासना-शरीर के कणों की रचना के क्रम में परिवर्तन हो अर्थात् जिसके यातना शरीर बन जाये। मरने के पीछे ऐसे हर साधारण मनुष्य को क्रम से इन सब भागों में होकर जाना पड़ता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि हर एक मनुष्य को इन सब भागों में बोध बना रहता है। साधारण सभ्य मनुष्य के वासना-शरीर में वासना-लोक के सबसे नीचे के भाग का अंश बहुत ही थोड़ा होता है और इतना नहीं होता कि उससे भारी सीप की रचना हो सके। कणों में परिवर्तन होने से शरीर पर सबसे बाहर की ओर भारी से भारी वासनिक कण आ जाते हैं, साधारण मनुष्य में भारी से भारी कण छठें विभाग के होते हैं और इनमें सातवें का भी कुछ अंश मिला हुआ होता है, इसलिये उस मनुष्य को इस पृथ्वी का (वासनिक) प्रतिरूप दिखायी पड़ता है।

जीवात्मा बाहर से हटकर अपने आपमें भीतर आती है और जैसे वह हटती जाती है, वैसे ही वह वासना-लोक की पंक्तियों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक-एक करके छोड़ती जाती है। इसलिये जितने अधिक कण किसी विभाग के उसके वासना-शरीर में होते हैं उतना ही अधिक उसको उस विभाग में ठहरना पड़ता है और उसके वासना-शरीर में वासना-लोक के किस किस भाग के अंश कितने कितने हैं, यह बात इससे निकलती है कि उसके आचरण कैसे रहे हैं और वह कैसी वासनाओं में लीन रहा है और इनके कारण उसके वासना शरीर में किस किस भांत के वासना-लोक के अंश (कण) खिंच-खिंच कर भिदे हैं। यों साधारण मनुष्य को छठें उपविभाग में यह जान पड़ता है कि वह उन मनुष्यों और स्थानों पर मंडरा रहा है, जिनसे कि उसका जीते जी पृथ्वी पर अति गाढ़ा सम्बन्ध था और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे ये पृथ्वी के पदार्थ धीरे-धीरे धुमले और उसके लिये तुच्छ होते जाते हैं और यों वह अपने परिकर को बदल-बदल कर अपने स्थायी विचारों से मिलता हुआ करता जाता है। जब वह तीसरे[१] उपविभाग में पहुंचता है, तब उसे यह जान पड़ता है कि पृथ्वी के पदार्थों के वासनिक रूप तो लोप हो गये हैं और उसकी ठोर यह स्थायी मन का भाव सर्वथा जम गया है।

तीसरे उपविभाग से दूसरा किंचित् सूक्ष्मतर है, क्योंकि यदि तीसरा उपविभाग भूत विद्यावालों का स्वर्ग है तो दूसरा उपविभाग अज्ञानी विश्वासशील आस्तिकों का है। पहला या सबसे ऊंचे दर्जे का उपविभाग उन लोगों के रहने का मुख्य स्थान है, जो जीते जी नास्तिक थे, परन्तु बुद्धिमानी के कामों में रत रहे हैं और इन कामों को परोपकार के अभिप्राय से नहीं किया है, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये या केवल अपने मनोरंजन के लिये किया है। ये सब लोग सर्वथा प्रसन्न हैं। कुछ आगे चलकर उनकी ऐसी अवस्था हो जायेगी

१. पितृलोक के तीन उपविभागों में से सबसे नीचे के उपविभाग में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि वे किसी ऊंचे लक्ष्य की कदर कर सकेंगे और जब यह अवस्था प्राप्त हो जायेगी, तब यह ऊंचा लक्ष्य भी उनको तैयार मिलेगा।

वासना-लोक में भी जैसा यहां होता है जो लोग एक ही देश के या एक ही धंधेवाले हैं वे साथ-साथ रहा करते हैं। यथा किसी मत के लोग जो किसी विशेष रूप के स्वर्ग के माननेवाले हैं, वे उन लोगों के बीच में नहीं पड़ते हैं जो दूसरे मतों के हैं और जिनकी स्वर्ग के सुखों की कल्पना अन्य तरह की है। ऐसी कोई रोक नहीं है कि ईसाई मंडराता-मंडराता हिन्दुओं या मुसलमानों के स्वर्ग में न जा सके, परंतु वह प्राय: जायेगा नहीं। क्योंकि उसके और उसके ईसाई मित्रों के अनुराग की और मन लगने की बातें सब उन्हीं के मत के स्वर्ग में होती हैं। यह किसी प्रकार समुच वह स्वर्ग नहीं है कि जिसका किसी मत में वर्णन किया हो परन्तु सच्चे स्वर्ग की यह केवल एक मोटी और भद्दी नकल है। असल स्वर्ग की बात यो मनलोक के वर्णन में आयेगी।

जिस मरे हुए मनुष्य ने अपने वासना-लोक के कणों में परिवर्तन नहीं होने दिया हो, वह वासना-लोक में जहां चाहे वहां जा सकता है और जिस किसी वस्तु की वह परीक्षा करता है, उसका और लोगों की तरह केवल एक अंश ही नहीं देखता है, किन्तु उसे समूचा देख लेता है। उसे इस लोक में इतनी भीड़ नहीं लगती कि जिससे अड़चन पड़े, क्योंकि पृथ्वी से वासना-लोक का विस्तार तो बहुत बड़ा है और वहां आबादी कम होती है, जिसका कारण यह है कि पड़ता फैलाने से साधारण मनुष्य जितने वर्ष पृथ्वी पर जीता है उससे वासना-लोक में उसे कम लगते हैं।

इस वासना-लोक में केवल मृत मनुष्य ही नहीं रहते, जीते हुए मनुष्यों में से भी लगभग एक तिहाई इसमें रहते हैं अर्थात् वे जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोते होते हैं और नींद में अपने स्थूल शरीर को थोड़े समय के लिये छोड़ जाते हैं। वासना-लोक में मनुष्यों के सिवाय और भी बहुत से जीव रहते हैं, इनमें से मनुष्य के दर्जे से कोई बहुत नीचे होते हैं और कोई बहुत ऊंचे। यक्ष, अप्सरादि देवों की एक बहुत बड़ी सृष्टि है जिनमें से कुछ वासना-लोक में रहते हैं और वहां की आबादी का एक बड़ा भाग इनका है। यह बड़ी सृष्टि, भूलोक में भी है, क्योंकि उसमें से बहुत से देवों के प्राणमय कोष (शरीर) भी होता है और वे साधारण स्थूल दृष्टि से देखने में आ जाये, उससे कुछ ही अधिक सूक्ष्म हैं। सच तो यह है कि बहुधा ऐसा होता है कि वे दिखायी भी पड़ सकते हैं और बहुत से एकान्त पहाड़ी क्षेत्र तथा किसानों में इनके दिखायी पड़ने की परम्परा से कथाएं चली आती हैं, इन किसान लोगों में इनके ये नाम हैं परियां, भले लोग, अप्सरा, भूरे देव आदि।

वे हर तरह का शक्ल धारण कर सकते हैं, परन्तु वे प्रायः छोटे-छोटे से मनुष्य की शक्ल बनाये रहते हैं। अभी उनमें अलग-अलग (व्यक्तिगत) जीवात्मा नहीं आई और इसलिये यह कहा जा सकता है कि वे प्रायः प्राणमय और वासना-शरीरधारी पशु हैं, परन्तु उनमें से बहुत से तो साधारण मनुष्य से बुद्धि में हर तरह से बराबर हैं। ये भी हमारी तरह जाति-जाति के और भांति-भांति के होते हैं। बहुधा इनके चार बड़े दर्जे किये जाते हैं और ये पृथ्वी की, पानी की, अग्नि की तथा वायु की परियां कहलाती हैं। इन चारों में से केवल वायु की परियां वासना-लोक में रहती हैं, परन्तु वे इतनी ज्यादा हैं कि वासना-लोक में वे हर कही मिलती हैं।

यहां एक और जाति के भी जीव हैं अर्थात् फरिश्ते जिनको हिन्दुस्तान में देवता कहते हैं। ये वे जीव हैं जो मनुष्य से क्रमोन्नति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में बहुत ऊंचे हैं और इनमें से केवल नीचे से नीचे दर्जे वाले ही वासना-लोक से मिले होते हैं। इस नीचे के दर्जे वाले देव शायद उस मनुष्य की उन्नति के बराबर है, जिसको हम भला मनुष्य समझते हैं।

इस सौर जगत में हम ही अकेले निवासी नहीं हैं और न हम मुख्य निवासियों की गिनती में हैं। हमारी क्रमोन्नति के साथ ही साथ दूसरी क्रमोन्नतियों की शैलियां भी चल रही हैं, इनको कभी मनुष्य नहीं बनना पड़ता, क्योंकि उनके क्रम में भी एक दर्जा है कि जो हमारे मनुष्यों के दर्जे के बराबरी का है। क्रमोन्नति की इन दूसरी शैलियों में एक यक्ष अप्सरादि की है जिसका कि ऊपर वर्णन हुआ है और इस शैली में ऊपर के एक दर्जे पर ये फरिश्तों या देवताओं की सृष्टि आती है। हमारी उन्नति के स्तर पर ये देव खुले वातावरण में हमसे बहुत ही कम मिलते हैं, परन्तु हम जैसे-जैसे उन्नति करते जायेंगे, वैसे ही ये देव हमको अधिक से अधिक मिलते जायेंगे।

जब मनुष्य की नीच वासनायें जाती रहती हैं अर्थात् वे वासनायें, जिनमें स्वार्थ का विचार होता है। तब मनुष्य का वासना-लोक के जीवन का छोर आ जाता है और जीवात्मा आगे मनलोक में चली जाती है। इसमें किसी प्रकार स्थान नहीं बदला जाता, इसमें तो केवल यह अर्थ है कि धीरे-धीरे भीतर हटते-हटते जीवात्मा अब सूक्ष्म से सूक्ष्म वासना कणों से भी पार निकल गई है और इस कारण से मनुष्य की चेतना अब मनलोक में आ जमा है। उसका वासना-शरीर अभी उन्नति नहीं कर पाया है, किन्तु उन्नति कर रहा है। मनुष्य उसको वासनिक-लोक की तरह उतार फेंकता है, ठीक जैसे उसने इससे पहले भीतर हटने (अन्तर्मुख होने) के दर्जे पर स्थूल-शरीर की लाश को छोड़ा था। इन दोनों में एक प्रकार का भेद है—जिसकी ओर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इस भेद में कुछ प्रयोजन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब मनुष्य अपने स्थूल शरीर को छोड़ता है, तब उससे उसका पूरा छुटकारा हो जाना चाहिये और प्रायः यह पूरा हो ही जाता है, परन्तु वासना-शरीर के कण जो अधिक सूक्ष्मतर हैं, उनके छोड़ने में यह बात नहीं होती है। जीते जी साधारण मनुष्य अपने वासनिक कणों में अपने को इतना उलझा लेता है अर्थात् वह अपनी नीच वासनाओं से अपने को इतना मिला देता है कि आत्मा की, जो भीतर हटने की शक्ति है वह इसे फिर पूरी तरह वासना-शरीर से अलग नहीं कर सकती। इसलिये जब वह अपने वासना-शरीर से अन्त में अपने आपको छुड़ा लेता है और मन-शरीर में अपना काम करने लगता है, तब उसका कुछ अंश जाता रहता है, अर्थात् उसका कुछ अंश वासना-शरीर में उलझा हुआ पीछे रह जाता है।

इससे वासना-शरीर की लोथ में कुछ प्राण बाकी रह जाते हैं और इसलिये यह लोक वासनिक लोक में फिर भी चलती-फिरती रहती है और अज्ञानी लोग भूल से सहज में इस वासनिकलोक को मनुष्य ही समझ लेते हैं और यह भूल विशेष करके ऐसे हो जाती है कि जो चेतना का अंश इस लोक में फिर भी बाकी रह जाता है वह इस मनुष्य का ही अंश है और इसलिये अपने आपको मनुष्य ही समझता है और बातचीत में भी अपने आपको मनुष्य ही बतलाता है। उस वासनिक लोक को अपनी (उस मनुष्य की) पहले की बातों की याद तो बनी रहती है, परंतु यह स्वांग न तो पूरा है और न इससे मन भरता है। कभी-कभी उन मंडलियों में जहां भूत-प्रेत बुलाये जाते हैं, इस प्रकार का जीव आ जाता है और तब देखनेवालों को यह अचरज होता है कि यह हमारा अमुक मित्र मरने के बाद इतना कैसे बिगड़ गया है, इस अधूरे जीव को हम वेताल कहते हैं। कुछ समय बाद यह चेतन का अंश भी वासना शरीर में से निकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है, परंतु फिर उस आत्मा में यह लौटकर नहीं जाता, जिसमें से यह आदि में निकला था। तब भी यह वासनिकलोक बना रहता है, परंतु जब इसमें पहले के जीव का लेशमात्र भी अंश नहीं रहता है, तब हम इसे खोखला कहते हैं, यह खोखला अपने आप भूत बुलाने वालों की मंडली में कुछ नहीं बता सकता और न अपने आप किसी प्रकार का काम कर सकता है। परंतु ऐसे खोखलों में कोई खिलाड़ी परियां घुस जाती हैं और उसमें कुछ समय के लिये रहने लगती हैं। ऐसा खोखला जिसमें परी आ गई हो, भूत-मंडली में बातें कर सकता है और उस खोखले के असली मालिक का स्वांग बन सकता है, क्योंकि उसके कुछ लक्षण और कुछ-कुछ याद उसके वासनिकलोक से यह परी उभार सकती है।

जब मनुष्य सो जाता है, तब वह अपने वासना-शरीर में हट जाता है और अपने सारे भौतिक शरीर, स्थूल व प्राणमय-कोष दोनों को छोड़ जाता है। जब वह मर जाता है, तब वह अपने साथ अपने भौतिक शरीर का प्राणमय भाग निकालकर अपने संग ले जाता है और इसलिये उस प्राणमय कोष से फिर अपने को छुड़ाने में उसे प्राय: कम से कम एक क्षण की बेहोशी हो जाती है। प्राणमय कोष वाहन नहीं है, और इसलिये वाहन या शरीर की तरह इससे काम नहीं लिया जा सकता है, इसलिये जब यह मनुष्य के चारों ओर घिरा हुआ होता है, तब वह मनुष्य उस समय न तो भूलोक में काम कर सकता है और न वासना-लोक में। कोई कोई मनुष्य इस प्राणमय कोष को कुछ क्षणों में ही छिटका देते हैं और कोई इसमें घंटों रहते हैं कोई कई दिन तक रहते हैं और कोई हफ्तों तक।

यह भी निश्चय नहीं है कि इसको अलग करते ही मनुष्य को वासना-लोक का एक साथ ही बोध हो जायेगा। क्योंकि उसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासनिक लोक के नीचे से नीचे दर्जे के कण बहुत होते हैं जिससे कि उसके चारों ओर सीप सी प्रायः बन जाती है। परन्तु शायद वह इन कणों को कुछ भी काम में नहीं ला सकेगा। अगर जीते जी उसका जीवन-चरित्र ठीक ठीक सभ्यता का रहा है तो इन नीचले से नीचले वासनिक कणों के काम में लाने या उनके कम्पनों से एकरस होने की आदत उसमें थोड़ी ही होगी और यह आदत क्षण भर में उसे प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये तब तक ये कण धीरे-धीरे खिल न जायें और इसके स्थान में ऐसे कण शरीर के ऊपर न आ जायें जिनको काम में लाने का इसे अभ्यास हो, तब तक वह बेहोश बना रहेगा। परन्तु ये सीप में बंद होकर कोई विरला ही निरा बेहोश हो जाता होगा, क्योंकि सीप (यातना शरीर) चाहे कितने ही जतन से क्यों न बनाई गई हो उससे सूक्ष्मतर अर्थात् बढ़िया कण उसमें होकर कुछ न कुछ बाहर निकल ही आते हैं और इससे मनुष्य को बाहर की वस्तुओं की क्षणिक झिलकें पड़ ही जाती हैं।

कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने भौतिक शरीरों में ऐसे बेबस होकर लगे होते हैं कि वे प्राणमय कोष को ढीला नहीं छोड़ते हैं, किन्तु पूरी शक्ति से उसके पकड़े रखने का यत्न करते रहते हैं। वे ऐसा बहुत समय तक कर सकते हैं, परंतु इसमें उन्हें कष्ट बहुत होता है। वे बंद होकर दोनों लोकों से बाहर रह जाते हैं और उन्हें यह जान पड़ता है कि उनके चारों ओर गहरा धुंधला कोहरा सा घिरा हुआ है, और इसमें होकर उन्हें भूलोक की वस्तुएं बहुत ही धुंधली-धुंधली दिखायी पड़ती है, जिनमें रंग सर्वथा नहीं होते। इस क्लेश की दशा में उनको अपनी स्थिति बनाये रखने में अत्यंत ही श्रम उठाना पड़ता है, तो भी वे अपने वासना-शरीर को नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उनको यह जान पड़ता है कि जिस एक लोक का उनको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिचय है, कम से कम उस एक लोक के जानने के लिये तो यह प्राणमय कोष एक साधन है। इस तरह वे सुनसान और उदास भटकते फिरते हैं, यहां तक वे इतने थक जाते हैं कि प्राणमय कोष भी उनसे छुट जाता है और वे वासना-लोक में फिसल जाते हैं जिसमें उनको कुछ सुख का अनुभव होने लगता है। कभी-कभी वे ऐसे उकता जाते हैं कि अंधे होकर दूसरों के शरीर को पकड़कर उनमें घुस जाने का यत्न करते हैं और किसी-किसी अवसर पर यह यत्न सफल भी हो जाता है। वे बालक के शरीर में भी कभी प्रवेश कर लेते हैं और उसके जीव को उसमें से निकाल देते हैं, या कभी-कभी वे किसी पशु के शरीर में भी घुस जाते हैं। ये सब क्लेश केवल अज्ञान से होता है और जो कोई मौत और जीवन के नियमों को समझ लेता है, उसे यह विपदा कभी नहीं हो सकती है।

जब वासना जीवन का अन्त आ जाता है तब यह मनुष्य वासना-लोक से भी मर जाता है और मनलोक स्वर्ग में जाग उठता है। दिव्यदृष्टि का अभ्यासी तो मनलोक भर में जहां चाहे वहां जाता है और जो देशकाल कि उसको वहां मिलते हैं, उनमें ठीक भूलोक और वासना-लोक की तरह रहता है। परन्तु जो ऐसा दिव्यदृष्टि का अभ्यासी नहीं है उसकी दशा ऐसी नहीं होती है। साधारण मनुष्य जीते जी सदा संकल्प के आकारों के समूह में घिरा हुआ रहा है, कोई कोई अनित्य विचारकों को वह कम ध्यान देता है और ये उससे जल्दी अलग हो जाते हैं, परन्तु वे विचारक जो उसके जीवन के मुख्य अनुरागों (शौक) के हैं, सदा उसके साथ रहते हैं और बराबर बढ़ते और मजबूत होते जाते हैं। अगर इनमें से कोई स्वार्थ के हों तो इनकी शक्ति वासनिक कणों में आ जाती है और उसके वासना-लोक के जीवन काल में ये विचारक क्षय हो जाते हैं। परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे विचारक जो निरे निःस्वार्थ (परोपकार) के हैं उनका सम्बन्ध केवल उसके मन-शरीर से होता है और इसलिये जब वह मनुष्य मन-शरीर में होता है, तब इन्हीं विशेष विचारों में होकर उसे मनलोक का भान होता है।

उसके मन-शरीर का विकास अभी पूरा नहीं हो पाया है, इसलिये इससे वे ही भाग अभी पूरा-पूरा काम देते हैं, जिनको वह परोपकार के काम में लाया है। जब वह फिर दूसरी मौत* के पीछे जागता है तो उसे पहले ही पहले जो बोध होता है, वह ऐसे आनन्द और प्राणशक्ति का होता है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता अर्थात् जीने में उसे इतना पूरा सुख लगता है कि उसे उस समय जीने के सिवाय और कोई चाहत नहीं होती है। इस सृष्टि के ऊंचे लोकों में जीने का सार यही आनन्द है। वासनिक जीवन अवस्था में भी इतना आनंद हो सकता है, जो स्थूल शरीर में आनन्द अनुभव हो सकता है उससे कहीं अधिक है, परन्तु मनलोक का स्वर्ग जीवन वासना-लोक की अपेक्षा अत्यन्त आनन्दमय है। इससे ऊंचे लोकों में भी क्रम से यह ही बात पाई जाती है, इन लोकों में से किसी में रहते हुए यह जान पड़ता है कि उसमें ही आनन्द की अत्यन्त परिपूर्ति है तो भी जब कि उससे ऊपर के लोक में मनुष्य पहुंच जाता है, तब उसे यह सूझने लगता है कि इसका सुख और भी अधिक बढ़कर है।

जैसे-जैसे आनन्द बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे बुद्धि और दृष्टि बढ़ती जाती है। स्थूललोक में मनुष्य हलबल करता फिरता है और ऐसा समझता है कि मैं बड़ा बुद्धिमान हूं। परन्तु वासना-लोक में पैर रखते ही उसे जान पड़ता है कि अभी तक मानो वह एक तुच्छ कीड़े की तरह रेंग रहा था और केवल अपने पत्ते ही को देख रहा था तथा

* वासनालोक की मौत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब उसने तितली की तरह अपने पर फैला दिये हैं और उड़कर एक बड़े लोक की सुहावनी धूप में वह आ गया है। यह असम्भव सा दिखायी पड़ता होगा, परन्तु जब वह वासना-लोक से मनलोक में जाता है, तब भी ऐसा ही अनुभव होता है, क्योंकि मनलोक की अवस्था भी वासनिक अवस्था की अपेक्षा इतनी अधिक भरी, फैली हुई और तीक्ष्ण है कि यहां भी कोई मिलान ही नहीं हो सकता, परन्तु इन सबसे भी परे एक और भी अवस्था है अर्थात् जनलोक, जिसके सामने यह भी ऐसा फीका है, जैसे किसी धूप के आगे चांदनी।

मनुष्य की मनलोक की दशा में और वासना-लोक की दशा में बड़ा भेद है। वासना-लोक में तो वह ऐसे शरीर से काम लेता था, जिससे काम लेना वह भलीभांति जानता था अर्थात् जो ऐसा शरीर है जिससे वह हर रात नींद में काम लिया करता था, परन्तु मनलोक में वह देखता है कि मैं ऐसे शरीर में हूं जिससे पहले मैंने कभी काम नहीं लिया है और जिसके पूरे विकास होने में भी अभी बहुत देर है। यह शरीर ऐसा होता है कि उस लोक की बातों को दिखाने के बदले उलटा उसको उस लोक से बहुत कुछ बंद कर देता है। उसके स्वभाव का नीचे का भाग तो उसकी पापमोचन अवस्था में (प्रेतलोक एवं पितृलोक में) जलकर क्षय हो चुका है। अब केवल उससे वे ही ऊंचे, सूक्ष्मतर विचार और वे ही उत्तम, परोपकारी उत्साह रह जाते हैं जिनका उसने जीते जी अभ्यास किया था। ये उसके चारों ओर घिर आते हैं और एक प्रकार की सीप उसके इर्द गिर्द बना लेते हैं, जिसके बीच में होकर अब उसे इन सूक्ष्म मानसिक कणों के किसी-किसी प्रकार के कम्पनों का अनुभव हो सकता है।

ये विचार ही जो इसके चारों ओर घिर जाते हैं। वे शक्तियां हैं जिनके द्वारा वह स्वर्गलोक के धन को खींच सकता है और उसे यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखायी पड़ने लगता है कि यह स्वर्गलोक मानो एक ऐसा भण्डार है कि जिसका अन्त नहीं है। परन्तु इसमें से वह उतना ही धन निकाल सकेगा जितनी कि उसके विचार और उत्साहों की शक्ति हैं, क्योंकि इस लोक में ईश्वर का अर्थात् दैवी मन अनन्त विस्तार से भरा हुआ है और इस दैवी मन की अनन्त सम्पत्ति हर एक जीवात्मा को उतनी खुली हुई है जितने के मिलने की उसने योग्यता हासिल कर ली है। जिस मनुष्य ने अपने मनुष्य के दर्जे की क्रमोन्नति पूरी कर ली है अर्थात् जिस मनुष्य ने उस परमात्मा का पूरा अनुभव करके उघाड़ लिया है, जिसका कि बीजमात्र उसके भीतर है उसे यह दिखायी पड़ता है कि इस लोक की सब चमत्कारी बातें उसको सुलभ हैं। परन्तु अभी हममें से किसी ने ऐसा नहीं कर पाया है और हम केवल धीरे-धीरे उस परम पद की ओर चढ़ रहे हैं, इसलिये हममें से कोई अभी उसे पूरा-पूरा प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

परन्तु हर एक को इस मनलोक से कुछ न कुछ मिलता है और इसमें से उसे उतना ही अनुभव होता है कि जितने के लिये उसने अपने पहले कर्मों से अपने को योग्य बना लिया है। मनुष्यों की मन की शक्तियों या लियाकतों में एक दूसरे से बड़ा अन्तर होता है। पूर्व के देशों में यह कहावत है कि हर एक मनुष्य अपने अपने साथ अपना प्याला लाता है, कोई प्याला बड़ा होता है और कोई छोटा, परन्तु हर एक प्याला चाहे वह बड़ा हो या छोटा, पूरा भरा है। आनन्द के समुद्र में इतना आनन्द समाता है जो सबकी चाहत से कहीं अधिक है।

इन दिव्य ओर सुंदर बातों को मनुष्य केवल उन खिड़कियों में से देख सकता है जिनको उसने अपने आप बनाई है। इन विचारकों में से हर एक मानो एक ऐसी खिड़की है, जिसमें होकर बाहर की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तियों के समाचार मिलते हैं। अगर जीते जी उसने सांसारिक वस्तुओं पर ही मुख्य ध्यान रखा है, तो उसने अपने लिये ऐसी खिड़कियां बहुत थोड़ी बनाई है, जिनमें होकर यह उत्तम तेज की झिलकें उस पर पड़ सकती है। तो भी हर मनुष्य में जो नीचे से नीचे जंगली मनुष्य से कुछ भी ऊंचा है, कुछ न कुछ पवित्र परोपकारी भाव का अनुभव हुआ होगा, चाहे वह उसके जीवन भर में एक बार ही हुआ हो और यह अब उसके लिये खिड़की बन जायेगा।

साधारण मनुष्य इस मनलोक में बहुत काम नहीं कर सकता है? क्योंकि उसकी दशा मुख्यतया ऐसी है कि केवल बाहर की बातों का असर इस पर हो सकता है न कि इसका उन पर परन्तु इनमें से ऐसी बहुत थोड़ी होती है, जो इसके ख्यालों की सीप में भीतर पार होकर इसको पहुंच सकें। उसके चारों ओर जीवित शक्तियां अर्थात् इस दिव्यलोक के निवासी विशाल देवता होते हैं और इन मंडलियों में से बहुत सी ऐसी हैं कि जो मनुष्यों के किसी किसी उत्साह के जान लेने की बहुत शक्ति रखती हैं और इस बोध के हो जाने पर उचित क्रिया करने पर तत्पर होती है। परन्तु मनुष्य इनसे वहीं तक लाभ उठा सकता है जहां तक कि उसने अपने आपको इस लाभ उठाने के लिये योग्य बना लिया है, क्योंकि उसके विचार और उत्साह केवल मुख्य मुख्य चाल ढाल के होते हैं और वह नई चाल ढालें एकाएकी बना नहीं सकता है। उत्तम विचार कई चाल ढाल के हो सकते हैं, कोई उनमें से अलग-अलग एक-एक के विषय में (व्यक्तिगत) और कोई जाति भर के विषय में (जातिगत) होते हैं। इस दूसरे भेद किस्म में शिल्प, संगीत और विज्ञान शास्त्र हैं, और जो कोई इनमें से किसी एक का भी रसिक शौकीन रहा है तो, उसके लिये इतने सुख और इतनी शिक्षा के अवसर तैयार मिलेंगे कि उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गिनती नहीं हो सकती, परन्तु उनमें से मिलेगा उसको उतना ही कि जितने की ग्रहण करने की इसे शक्ति है।

हमें बहुत से मनुष्य ऐसे मिलते हैं जिनके उत्तम विचार केवल प्रीति और भक्ति के हैं। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरे से बहुत स्नेह करता है या किसी सगुण देवता की उसमें दृढ़ भक्ति है तो उसके मन में उस मित्र या देवता की चटकदार मूर्ति या शक्ल बन जाती है और वह मित्र या देवता बहुधा उसके मन में मौजूद रहता है। यह मानसिक शक्ल उसके संग स्वर्ग में साक्षात् जाती है, क्योंकि यह उन कणों की ही बनी हुई है कि जो स्वर्ग लोक (मनलोक) के हैं।

पहले प्रेम को लें, जिस स्नेह से ऐसी शक्ल बन जाती है और बनी रहती है, वह एक बड़ी प्रबल शक्ति है अर्थात् एक ऐसी शक्ति है जो इतनी सामर्थ वाली है कि वह मनलोक के ऊंचे भाग में उस मित्र के जीवात्मा तक पहुंच जाती है और उस पर असर करने लगती है। यह स्नेह जीवात्मा के साथ है, जो असली मनुष्य है न कि स्थूल शरीर के साथ, क्योंकि स्थूल शरीर तो उस मनुष्य की केवल अधूरी नकल है। मित्र की जीवात्मा स्नेह के कम्पनों का बोध होते ही तत्काल बड़े उत्साह से उस स्नेह को स्वीकार कर लेती है और उस स्नेह करने वाले के मन-शरीर में जो इसकी शक्ल बनी है, उसमें अपनी जान डाल देती है और इस रीति से उस मनुष्य का मित्र सचमुच उसके पास ऐसा प्रत्यक्ष सा आ जाता है, जैसा पहले कभी नहीं आया था। इसमें इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह मित्र जीता है या मरा हुआ है। क्योंकि यह स्नेह का बुलावा उस मित्र के उस अंश को नहीं है। जो स्थूल शरीर में बंधा पड़ा है, परन्तु असली मनुष्य को है कि जो ऊंचे मनलोक में अपनी असली निज पंक्ति (दर्जे) पर स्थित हैं और ऐसा कभी नहीं होता है कि ऐसे बुलावे का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर उस (जीवात्मा) से न आये। जिस मनुष्य के सौ मित्र हों वह एक ही साथ पूरी तरह से उन सौ में से हर एक को प्रेम का उत्तर दे सकता है। क्योंकि नीच मनलोक में चाहे जितने रूप बनाये जायें, उनसे वह अनंत जीवात्मा कभी घटता नहीं।

यों स्वर्ग की अवस्था में हर मनुष्य के चारों ओर वे सब मित्र होते हैं, जिनके संग की उसे इच्छा होती है और ये सब मित्र उसको सदा अच्छे से अच्छे दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि जिन मानसिक रूपों में होकर ये उसको दिखायी पड़ते हैं, वे उसी के मन के और जैसे चाहे वैसे रचे हुए हैं। हमारे स्थूल लोक के अज्ञान के परदे में जब कभी हम किसी मित्र का स्मरण करते हैं तो हम केवल उसके उतने ही थोड़े से अंश का विचार करते हैं, जितना हमको इस स्थूललोक में भान होता है और यह स्वभाव हमारा इतना पक्का हो गया है कि स्वर्ग के अवस्था की इस महिमा का अनुभव होना ही एक बार कठिन हो जाता है। जब हम इसका अनुभव कर सकेंगे तब हमको दिखायी पड़ने लगेगा कि भूलोक से स्वर्ग लोक में अपने मित्रों के हम असल में कितने अधिक नजदीक हैं। स्वर्ग में ऐसी ही व्यवस्था भक्तिभाव में होती है। देवता अपने भक्त के निकट तो भूलोक में भी होता है, परन्तु स्वर्ग में वह इसके दो दर्जे अधिक निकट हो जाता है और इसलिये उस भक्त को स्वर्ग में अत्यन्त अधिक चमत्कार मालूम होता है।

इस मनलोक में भी वासना-लोक की तरह सात स्तर हैं, पहले, दूसरे और तीसरे *स्तर में तो जीवात्मा अपने कारण शरीर (विज्ञानमयकोष) को धारण किये हुए रहती हैं और जो नीचे के चार स्तरों में उसकी स्वर्ग अवस्था बीतती है। वासना-शरीर में तो

* ये तीनों स्तर मिल कर महर्लोक कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक एक स्तर को अलग-अलग मनुष्य को उलांघना पड़ता है, क्योंकि वहां वासना-शरीर के कणों की रचना के क्रम में (यातना शरीर सम्बन्धी) परिवर्तन होता है, परन्तु स्वर्ग में न ऐसा रचना में परिवर्तन होता है, न तो एक-एक स्तर उलांघना पड़ता है। यहां तो यह होता है कि जिस स्तर की मनुष्य की उन्नति हो उसके मेल के स्तर में मनुष्य खिंच जाता है और उसी स्तर पर वह अपनी सब स्वर्गावस्था अपने मन शरीर में बिताता है। हर मनुष्य अपनी-अपनी अवस्था अपने आप बनाता है, इसलिये व्यवस्थाओं के भेदों की गिनती नहीं हो सकती।

हम यह कह सकते हैं कि सामान्य रीति से स्वर्ग के सबसे नीचे (सातवें) स्तर के निवासियों में जो प्रधान गुण देखने में आता है वह उसकी निःस्वार्थ कुटुम्ब की प्रीति है। यह नियमित बात है कि यह प्रीति स्वार्थ की नहीं होनी चाहिये, नहीं तो इसको यह स्थान नहीं मिल सकता। अगर इस प्रीति में कोई स्वार्थ का टांका हो तो उसका फल वासना-लोक में ही मिल गया होता। छठें स्तर में प्रायः सगुण उपासना के भक्त लोग देखने में आते हैं, पांचवें में वे भक्त हैं जो कर्मयोग (नेकी के कामों) के अनुरागी हैं। इन सबमें अर्थात् पांचवें, छठें और सातवें स्तर में उस भक्ति का फल मिलता है जो किसी न किसी शरीरधारी पुरुष पर हो, चाहे कुटुम्बी पर, चाहे मित्रों पर या चाहे ईश्वर के किसी सगुण रूप पर। परंतु जो भक्ति विस्तार में अधिक और निष्काम तथा मनुष्य मात्र पर हो वह इससे ऊपर के अर्थात् चौथे स्तर में प्रकट होती है।

इस चौथे स्तर वालों के कर्म तरह-तरह के होते हैं, उनके चार मुख्य भेद हो सकते हैं—(१) अध्यात्म विद्या का निष्काम पढ़ना, पढ़ाना (२) उत्तम शास्त्र या पदार्थविद्या का मनन (३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य या शिल्प की कुशलता जो निष्काम बातों में लगायी जाये और (४) निष्काम सेवा करना।

इस उत्तम स्वर्ग अवस्था का भी अन्त होता है और तब मन-शरीर भी दूसरे और शरीरों की तरह उतर जाता है और तब मनुष्य के कारण शरीर (विज्ञानमय कोष) की जीवन अवस्था का प्रारम्भ होता है। यहां मनुष्य को कोई खिड़कियां नहीं चाहनी पड़ती। क्योंकि यह उसका असली घर है और उस मनुष्य की सब दीवारें गिर चुकी हैं। बहुत से मनुष्यों को ऐसे ऊंचे दर्जे पर अब भी बहुत ही थोड़ा बोध रह जाता है, वे स्वप्न की सी दशा में आराम में रहते हैं और कुछ देखते-भालते नहीं हैं और नाम मात्र को जागते होते हैं और इन्हें योग्यता कम होने से थोड़ा सा ही दिखायी देता है, परन्तु जो कुछ दिखायी पड़ता है वह होता है सच्चा और जैसे-जैसे बार-बार मनुष्य स्वर्ग में होकर इस कारण शरीर की अवस्था में लौटकर आता है, वैसे-वैसे उनको अधिक से अधिक दिखायी पड़ता जाता है और वे स्वयं भी उन्नत होते जाते हैं और इस कारण शरीर के असली जीवन की अवस्था उनके लिये बड़े विस्तार और सफलता की होती जाती है।

इस उन्नति के साथ साथ इस कारण शरीर के जीवन के दिन भी बढ़ते जाते हैं और नीचे के लोकों के जीवन समय से इसका समय बराबर अधिक बढ़ता जाता है और जैसे कि मनुष्य उन्नत होता जाता है, वैसे ही उसमें लेने की ही शक्ति नहीं बढ़ती। किन्तु देने की भी और तब ही उसकी जीत का समय नजदीक होता है, क्योंकि वह उस शिक्षा को ग्रहण कर रहा है जो कि भगवान् ने उपदेश की है। उस शिक्षा में ये प्रमुख बातें हैं—यज्ञ का ऊंचे से ऊंचा माहात्म्य, मनुष्यों की सहायता में अपने सारे जीवन को लगाने का आनन्द,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगत के लिये अपनी आत्मा का समर्पण, मनुष्य की सेवा में अपना आत्मबल लगाना और उन सब विशाल दैवी शक्तियों का पृथ्वी के दुःखी लोगों की सहायता में लगाना। इन सब बातों से थोड़ी सी सूचना उस अवस्था की होती है जो हमारे लिये आने वाली है। ये सब बातें मानो सोने की सीढ़ियां हैं जिनको हम भी जो उसके नीचे किनारे पर खड़े हुए हैं, अपने आगे निकलते हुए देख सकते हैं।

इन सब बातों के समाचार उन लोगों को जिन्हें अभी ये नहीं दिखायी पड़े हैं, इसलिये देना है कि वे भी अपनी आंखें खोलें और उस प्रभुताई को देखें, जो अब भी इस कठोर स्थूल लोक में उनके चारों ओर भरी हुई है, परन्तु इसका उन्हें कुछ भी भान नहीं हो सकता है। ब्रह्मविद्या जो मंगल समाचार (खुशखबरी) देती है, उसका यह सब एक अंश है और वह मगल समाचार यह है कि यह उत्तम पद सबको एक दिन निश्चय मिलने वाला है। यह बात निश्चय है कि यह परमपद पहले से ही मौजूद है और वंश-परम्परा से इसके हम अधिकारी हैं, परन्तु इसके मिलने के लिये हमें केवल योग्यता प्राप्त करनी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. पुनर्जन्म

अपने निज लोक में जीवात्मा का जीवन, उन्नत मनुष्य के लिये तो बहुत चमत्कारी और संतोषदायक है, परन्तु साधारण मनुष्य पर उसका थोड़ा असर होता है। क्योंकि साधारण मनुष्य का जीवात्मा अभी इतना उन्नत नहीं हो पाया है कि वह अपने कारण शरीर में सचेत रह सके। प्रकृति के नियम के अनुसार वह अपने कारण शरीर में घुस तो जाता है, परन्तु इस पर उसे अपने जीवन का स्पष्ट बोध होना बंद हो जाता है और उसे बड़ी आतुरता से यह इच्छा होती है कि मुझे जीवन का स्पष्ट बोध फिर होने लगे और यह इच्छा उसे फिर एक बार स्थूल में उतरने के लिये फेंक देती है।

वर्तमान अवस्था में मनुष्य की क्रमोन्नति का यही नियम है अर्थात् यह कि वह स्थूल में उतरकर उन्नति करे और जो-जो अभ्यास स्थूल लोक में उसने किया है उनका सार इकट्ठा करके फिर ऊपर चढ़ जाये। उसका असली जीवन इसलिये लाखों वर्ष का होता है और जिसको हम एक जन्म कहते हैं वह उसके इस बड़े जीवन में केवल एक दिन के समान है। असल में तो वह एक दिन का भी एक छोटा टुकड़ा है, क्योंकि स्थूल लोक में ७० वर्ष के जीवन के पीछे प्रायः उससे बीस गुणा अधिक समय ऊंचे लोकों में बीतता है। हममें से हर एक के ऐसे बहुत से जन्म हो चुके हैं और साधारण मनुष्य को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी बहुत से जन्म लेने हैं। ऐसे जन्म मानो पाठशाला के एक-एक दिन के समान है। हाड़-मांस का चोला पहनकर जीवात्मा कुछ पाठ सीखने के लिये स्थूल लोक की पाठशाला में जाता है। वह अपने पाठशाला में अपने स्थूल जीवन में इन बातों को या तो सीख लेता है या नहीं सीखता है, या कुछ कुछ सीख लेता है और फिर इस हाड़-मांस के चोले को उतार डालता है और अपने निज लोक में विश्राम और चैन पाने के लिये लौटकर घर आ जाता है। हर एक नये जीवन के प्रातःकाल (शुरू) में वह अपने पाठ को उसी स्थान से फिर आरम्भ कर देता है, जहां पर उसने पहले रात को छोड़ा था। कुछ पाठ तो वह एक ही दिन में सीख लेता है और किसी पाठ में उसे कई दिन लग जाते हैं।

अगर वह चतुर विद्यार्थी है और जिस बात की जरूरत हो, उसे झटपट सीख लेता है और अगर पाठशाला के नियम उसके समझ में भली-भांति आ गये हैं और वह श्रम उठाकर इन नियमों पर चलता है तो उसकी पढ़ाई के दिन औरों से थोड़े होते हैं और जब कि पढ़ाई हो चुकती है तो जो बातें उसने सीखी हैं, उनसे सजकर वह ऊंचे लोकों के असली जीवन में चला जाता है जिसके लिये ये साधन मात्र तैयारियां होती हैं। कुछ जीवात्मा सुस्त लड़कों की तरह होते हैं, जो जल्दी नहीं सीखते, इनमें से किसी-किसी को पाठशाला के नियम समझ में नहीं आते और इस कारण ये नियम उनके हाथ से बराबर टूटा करते हैं। कुछ जीवात्मा हठीले होते हैं और नियमों को समझ लेने पर भी वे तत्काल उन पर चलने को असमर्थ होते हैं, इन सबको बहुत दिनों तक पाठशाला में रहना पड़ेगा, और ऊंचे लोकों के असली जीवन में प्रवेश करने में जो उन्हें देरी होती है, उसका कारण उनके ही कर्म होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह एक ऐसी पाठशाला है जिसमें कोई विद्यार्थी परिणाम में निराश नहीं रहता है, क्योंकि हर एक को ठेठ तक पहुंचना ही पड़ता है। यह बात उसकी इच्छा पर नहीं छोड़ी गई है। परन्तु ऊपर की परीक्षा की तैयारी के लिये उसे कितना समय लगेगा, यह बात केवल उसकी ही इच्छा पर छोड़ी गई है। जो विद्यार्थी बुद्धिमान है वह यह जानता है कि विद्यार्थी को अवस्था अपने आप कोई लक्ष्य नहीं है, किन्तु वह एक अत्यंत उत्तम जीवन अवस्था के लिये साधन मात्र है, और इसलिये वह जहां तक हो सकता है अपनी पाठशाला के नियमों की भलीभांति समझने का प्रयत्न करता है और जहां तक उससे बन सकता है उन नियमों पर चलता है, जिससे जो पाठ सीखना है, उनको सीखने में समय व्यर्थ न जाये। वह गुरुदेवों के अभिप्राय को समझ लेता है और उसके अनुसार चलता है और जो काम उससे हो सकता है उसे अधिक से अधिक करने का वह प्रयत्न करता है ताकि जितनी जल्दी हो सके, वह (जवान) बालिग हो जाये और तेजस्वी आत्मा बनकर अपने लोक में प्रवेश करे।

ब्रह्मविद्या हमको यह भी समझाती है कि वे कौन-कौन से नियम हैं, जिन्हें इस विद्यार्थी अवस्था में हमको पालन करना चाहिये और यह उनके लिये बड़े लाभ की बात है। इनमें से पहला नियम क्रमोन्नति का है। हर एक मनुष्य को परिपूर्ण बनना है अर्थात् उसमें जो दैवी शक्तियां छिपी हुई हैं, उनको पूरा-पूरा उभारना है। क्योंकि मनुष्य के लिये इस सारी विश्व-रचना का यही अभिप्राय है कि ये शक्तियां उभारी जायें। यह क्रमोन्नति का नियम उसे अधिक से अधिक कर्तव्यों के लिये लगातार आगे को दबाता रहता है। जो मनुष्य बुद्धिमान होता है, वह यह प्रयत्न करता है कि पहले से वह जान लें कि यह क्रमोन्नति का नियम (कानून कुदरत का) उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या-क्या कराना चाहता है, अर्थात् वह साधारण पढ़ाई के क्रम से आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, क्योंकि इस रीति से उसको उस नियम के विरोध पड़ने की जोखिम ही नहीं टल जाती है, वरन् उस नियम के बर्ताव से उसे अधिक से अधिक मदद भी मिलती है। जिन्दगी की दौड़ में जो मनुष्य पिछे छूटता है, उसे छूटने से यह दबाव बराबर रोकता है और यह दबाव ऐसा है कि अगर कोई इससे उल्टा चले तो तुरन्त कष्ट होने लगता है। क्रमोन्नति के मार्ग में पिछड़ने वाले मनुष्य को सदा यह जान पड़ता है कि मानो पीछे से विधाता उसे आगे को खदेड़ रहा है और जो मनुष्य कि विधाता के अभिप्राय को समझ कर उसके अनुकूल चलता है, जहां तक वह आगे बढ़ता रहे, उसे पूरी स्वतंत्रता होती है कि वह जिस ओर को चाहे उस ओर को चले।

दूसरा बड़ा नियम यह है कि जिसके ऊपर उन्नति का क्रम चल रहा है, कर्म और कर्मफल का नियम है, अर्थात् जो जैसा करेगा, वैसा फल पायेगा। कोई ऐसा कार्य या फल नहीं है कि जिसका कारण न हो और हर एक कारण का कार्य या फल बिना पैदा हुए नहीं रह सकता है, कार्य और कारण असल में दो वस्तु नहीं है, किन्तु एक ही है। क्योंकि फल असलियत में कारण का एक अंश ही है और अगर कोई एक को चला दे तो दूसरा भी चलने लग जाता है। विधाता के यहां केवल कारण और कार्य अर्थात् कर्म और फल का विचार है, न कि इनाम या दण्ड का, इस बात को यंत्रविद्या या रसायन विद्या में हर कोई देख सकता है। क्रमोन्नति के विषय में यह बात दिव्य दृष्टिवाले को भी उतनी ही प्रत्यक्ष दिखायी पड़ सकती है जो नियम नीचे के लोकों में है, वही ऊपर के लोकों में पाया जाता है। अपने यहां यह नियम है कि अगर किसी वस्तु का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिंब[१] भूमि पर रखे हुए किसी चपटे कांच पर पड़े तो उसका प्रतिबिंब उस कांच के ऊपर को दूसरी ओर से धरातल से उतना ही झुकते हुए उठा होगा, जितना असली बिंब झुका था, ऐसा ही नियम[२] ऊपर के लोकों में है। शिल्पविद्या का एक यह नियम है कि क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर होती है, परन्तु एक दूसरे से उल्टी होती है। ऊंचे के लोकों के अणु स्थूललोक से अत्यन्त ही सूक्ष्म होते हैं, इन अणुओं में प्रतिक्रिया होती तो है, परन्तु ऐसा सदा नहीं होता कि प्रतिक्रिया क्षण भर में ही समाप्त हो जाये। कभी-कभी तो यह इतनी धीरे-धीरे होती है कि इसके समाप्त होने में बहुत काल लग जाता है परन्तु प्रतिक्रिया टल नहीं सकती और वास्तविक क्रिया के ठीक बराबर होती है।

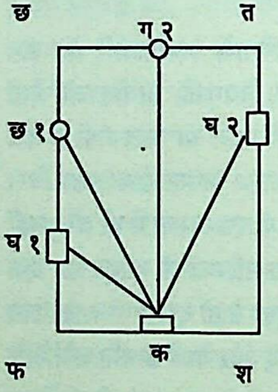

१. जैसे एक कमरे में फ, श फर्श है, फ, छ और श, त दीवारें और छ, त छत है और फर्श पर क, काच रखा हुआ है और दो वस्तुयें एक गोल ग, एक दीवार में लगी हुई और दूसरी चौकोर घ, १ एक फ, छ दीवार पर रखी हुई है। इन दोनों वस्तुओं का बिंब क, कांच पर पड़कर उनका प्रतिबिंब सामने की ओर श, त दीवार पर ग २ घ २ पर पड़ रहा है, यहां ग १ और घ १ का झुकाव कांच क, पर जितना है, उतना ही झुकाव उसी कांच पर उनके प्रतिबिंब ग २, घ २, का दूसरी ओर है, अर्थात् कोण फ. क. ग १=कोण श, क. ग २ के और कोण फ. क. घ १=कोण श. क. घ. २, के।

२. इसका उदाहरण यह है कि अगर गेंद को दीवार पर मारें तो वह तत्काल पीछे उछलकर आयेगी और जितने जोर से फेंको जायेगी उतने ही जोर से पीछे लौटकर आयेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थूललोक में जैसे शिल्पविद्या के नियम ऐसे हैं, उनके बर्ताव में अन्तर नहीं पड़ता और यह निश्चय रहता है कि अमुक क्रिया से अमुक फल ही होगा, वैसा ही निश्चय उस ऊंचे नियम का है। अगर कोई मनुष्य भलाई का विचार भेजेगा या भलाई का कर्म करेगा तो उसको बदले में अच्छा फल मिलेगा और अगर वह बुराई का विचार बाहर भेजेगा या बुराई का कर्म करेगा तो बदले में उसको निःसन्देह उतना ही बुरा फल मिलेगा। यहां फिर यह कहना अनुचित न होगा कि इस फल के लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि वह किसी प्रकार ऐसा इनाम या दंड है, जिसकी किसी दूसरे ने आज्ञा दी हो, किन्तु यह केवल उसके ही कर्मों का निश्चित और शिल्प के नियमों की तरह निकला हुआ फल है। लोगों को स्थूल लोक में शिल्प अर्थात् यंत्रों के फल तो भलीभांति परिचित हो गये हैं। क्योंकि बहुधा क्रिया का फल तत्काल पैदा हो जाता है और वह उनको दिखायी पड़ सकता है। परन्तु ऊंचे लोकों में मनुष्य को प्रतिक्रिया सदा समझ में नहीं आती क्योंकि इन ऊंचे लोकों में प्रतिक्रिया (क्रिया का फल) दूर पर जाकर निकलता है और प्रायः इस जन्म भर में भी नहीं, किन्तु आगे किसी जन्म में पैदा होता है।

संसार के साधारण व्यवहारों में बहुत सी गूढ़ बातें ऐसी हैं जिनकी व्यवस्था कर्म के इस नियम से लग जाती है कि जो जैसा करता है, वैसा पाता है। मनुष्यों की प्रारब्ध में अन्तर क्यों होता है और स्वयं मनुष्यों में भी अन्तर क्यों होता है। इसकी व्यवस्था कर्म के नियम से लग जाती है। अगर किसी एक बात में एक मनुष्य चतुर है और दूसरा मूढ़ तो इसका कारण यह है कि किसी पूर्व जन्म में उस चतुर मनुष्य ने उस बात में बहुत अभ्यास किया होगा और मूढ़ मनुष्य अब पहले ही पहल अभ्यास करने लगा है। अगर कोई तीव्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि वाला होता है या बचपन ही में असाधारण शक्तियों वाला हो जाये तो यह किसी देवता की कृपा से नहीं हुआ है किन्तु पहले जन्मों के परिश्रम का फल है। इसमें जो-जो गुण और स्वभाव हैं, वे हमारे पिछले कर्मों के फल हैं। ऐसी ही हमारी तरह-तरह की देशकाल व्यवस्था अर्थात् संपत्तियां-विपत्तियां भी हमारे पिछले कर्मों के अनुसार ही मिलती है। हमारे स्वभाव हमारे ही बनाये हुए हैं और देश कालभी हमको वैसे ही मिले हैं, जिनके हम अधिकारी हैं।

परन्तु ये कर्मफल हमसे बड़ी युक्ति के साथ भुगताये जाते हैं। यह नियम जड़ तो है और यंत्रों की तरह इसका काम चलता है, परंतु इसका प्रबंध कई बड़े देवताओं के हाथ में हैं। किसी विचार या कर्म का फल जितना होना चाहिये, उसमें वे रत्ती भर भी घटा बढ़ा नहीं सकते। परन्तु वे इसके भुगतान में थोड़ी बहुत जल्दी या देर कर सकते हैं और यह भी उनके हाथ में है कि कर्मफल को चाहे जिस शक्ल में भुगतावें।

अगर ऐसा नहीं किया जाता तो कम से कम इतना विरोध हो जाता है कि नीचे के स्तर में मनुष्य से जो बड़ी-बड़ी चूकें हो जाती हैं, अगर वे एक साथ भुगता ली जातीं तो वह उन्हें सह नहीं सकता। परमेश्वर का यह अभिप्राय है कि मनुष्य को थोड़ी सी स्वाधीनता का हक मिलता है। अगर वह स्वाधीनता को बुरी रीति से काम में लाता है तो इसके बदले उसको कष्ट मिलता है और वह अपने पहले कर्मों के कारण पराधीनता में रहता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य यह सीखता जाता है कि यह स्वाधीन इच्छा किस रीति से काम में लाना चाहिये, त्यों-त्यों उसे अधिक से अधिक स्वाधीनता मिलती जाती है और यों भलाई के लिये उसे जितनी चाहे उतनी स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है, परन्तु बुराई करने के लिये उसकी शक्ति पर एक भारी रोक होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह उन्नति तो जितनी जल्दी चाहे उतनी जल्दी कर सकता है, परन्तु यह नहीं हो सकता है कि वह अज्ञान से अपनी जीवनरूपी नौका को डुबा ही दे। यह बात स्वाभाविक है कि मनुष्य की जंगली अवस्था के नीचे के दर्जों में सब मिलाकर पुण्य से पाप अधिक होता है और अगर उसके सारे कर्मों का इकट्ठा फल उस पर उस निर्बलता की अवस्था में एक साथ डाल दिया जाता तो उसकी शक्तियों के नये और कोमल अंकुर कुचल जाते।

इसके सिवाय उसके कर्मों का प्रभाव भी तरह-तरह का होता है। किसी कर्म का फल तत्काल होता है, किसी-किसी का बहुत देर में और इसलिये ऐसा होता है कि जब मनुष्य उन्नति कर लेता है, तब उसके सिर पर बिना भुगते हुए संचित कर्मों का एक बादल मंडराता रहता है, जिनमें से कुछ पुण्य के (अच्छे) होते हैं और कुछ पाप के (बुरे)। संचित कर्मों के ढेर को उपमा के रूप में हम यों मान सकते हैं कि यह सृष्टि का ऋण उस मनुष्य पर है। इसमें से थोड़ा-थोड़ा उसके हर एक जन्म में चुकने के लिये होता है और जितना कि एक जन्म में चुक जाता है, उतना ही उस मनुष्य का उस जन्म के लिये प्रारब्ध कहलाता है।

इस सबका सार यह है कि हर एक मनुष्य के खाते में कुछ सुख, कुछ दुःख मिलने वाला होता है और यह टल नहीं सकता। परंतु वह इसे किस प्रकार सहेगा और इससे क्या काम लेगा, ये बातें केवल उसकी ही इच्छा पर रहती है। यह तो मानो एक नियत शक्ति है कि जो बिना छूटे नहीं रह सकती। इस शक्ति को कोई रोक नहीं सकता, परंतु जैसा कि यंत्रविद्या में भी होता है अगर दूसरी ओर से कोई नया बल लगा दिया जाये तो इस प्रारब्ध की शक्ति का वेग मुड़ जरूर सकता है। पिछले पापों का फल भी दूसरे ऋणों से यों मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ है कि जैसे धन का ऋण चाहे एक बड़ी हुंडी देकर चुका दिया जाये और चाहे छोटे-छोटे नोट देकर। वैसे ही पिछले पाप, चाहे एक बड़ी आपत्ति सहकर काट लिये जायें और चाहे छोटे-छोटे दुःख और चिन्ताएं भुगत कर। कभी-कभी तो यह पापों का ऋण रेजगारी की तरह अत्यंत छोटी-छोटी बहुत सी कुढ़ने की बातों से कट सकता है, परन्तु यह एक बात पूरी निश्चित है कि किसी न किसी शक्ल में यह ऋण उतारना ही पड़ेगा।

इसलिये जो अब हमारी दशा है, वह केवल हमारे पिछले कर्मों का फल है और इससे यह बात भी निकलती है कि जो नवीन कर्म हम अब कर रहे हैं, उनसे हमारे आगे के जन्म की दशा की तैयारी हो रही है। अगर किसी मनुष्य को यह जान पड़े कि उसके अधिकार या बाहरी संपत्ति में कमी है तो इस जन्म में तो स्यात् वह अपने स्वभाव या अपनी दशा में हमेशा हर एक बात को मन चाही नहीं बदल सकेगा। परन्तु वह अपने अगले जन्म के लिये, जैसा चाहे यहां कमाई कर सकता है।

मनुष्य का हर एक कर्म अपने ऊपर ही समाप्त नहीं होता, किंतु उसके आसपास के दूसरे लोगों पर उसका असर पड़ने से रुक नहीं सकता। कुछ कर्मों का असर बहुत हल्का होता है और कुछ का अत्यन्त भारी। हल्के कर्म, चाहे अच्छे हों बुरे, हमारे कर्म के खाते में दैव (कुदरत) की बही में छोटी-छोटी रकमों के जमा खर्च हैं, परन्तु भारी फलवाले कर्म, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, हमारे उस मनुष्य के व्यक्तिगत खाते में पड़ते हैं, जिसका उनसे सम्बन्ध है और उसी मनुष्य से उन कर्मों का भुगतान व्यक्तिगत खाते से होता है।

अगर कोई मनुष्य किसी भूखे भिखारी को भोजन दे या उसे मीठे वचनों से प्रसन्न करे तो उस पुण्य का फल उसको दैव (कुदरत)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सामान्य खाते से मिलेगा, परन्तु अगर कोई मनुष्य अच्छा कर्म ऐसा करे कि जिससे किसी दूसरे का सारा जीवन चरित्र बदल जाये तो उसको उस मनुष्य से आगे किसी जन्म में इस प्रयोजन से निश्चय मिलना पड़ेगा कि जिसको लाभ मिल चुका है, उसे उस भलाई का प्रतिफल देने का अवसर मिल सके। अगर कोई मनुष्य किसी दूसरे का मन दुखाये तो उसे इसके बदले में आगे कभी न कभी किसी न किसी प्रकार उतना ही भुगतना पड़ेगा, चाहे वह मनुष्य जिसको दुःख पहुँचा है उसे कभी भी न मिले। परन्तु जो मनुष्य किसी दूसरे को भारी हानि पहुंचाता है अर्थात् जो उसके जिन्दगी भर को बिगाड़ देता है या उसकी उन्नति में बाधा डाल देता है तो उसे फिर इस मनुष्य से आगे जन्मों में किसी अवसर पर निश्चय मिलना पड़ेगा, जिससे इसे यह अवसर मिले कि अपने पाप का बदला उसकी नम्रता और सेवा करके भुगता दे। सारांश यह है कि बड़े-बड़े ऋण तो निजी शरीरों से भुगताये जाते हैं, परंतु छोटे-छोटे ऋण का हिसाब साधारण रोजनामचे में ही रहता है।

ये बड़ी-बड़ी बातें हैं, जिनसे यह बात निश्चय की जाती है कि किसी मनुष्य का आगे जन्म कहां होना चाहिये। सबसे पहले सृष्टि के क्रमोन्नति का बड़ा नियम काम करता है और इस सृष्टि के नियम का यह स्वभाव है कि जिस अवस्था में सहज से सहज रीति से चाहते-चाहते गुण बढ़ सके, उसकी ओर मनुष्य को लगाये रहे। इस बड़े प्रबन्ध में मनुष्य की कई मुख्य जातियां रखी गयी हैं, जिनको मूलजाति कहते हैं और इन्हीं ने पृथ्वी पर एक दूसरे के पीछे उत्पन्न होकर प्रभुता पाई है। इनमें से एक आर्यों की बड़ी जाति भी है जिसमें कि आजकल पृथ्वी के सबसे बड़े मनुष्य शामिल हैं। इससे पहले क्रम से मंगल जाति उत्पन्न हुई थी, जिसे ब्रह्मविद्या सभा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पुस्तकों में ऐटलांटियन इसलिये कहते हैं कि जिस स्थल पर रहकर उन्होंने पृथ्वी का राज्य किया था, वह उस स्थान था, जहां अब ऐटलांटिक समुद्र भरा हुआ है। इस जाति के पहले हब्शी थे जिनके वंश में से कुछ अब भी हैं। परंतु दूसरी नवीन जाति की शाखाओं से अब ये बहुत कुछ घुल मिल गई है। इन बड़ी मूल जातियों में से हर एक में से बहुत सी शाखा निकली हैं, जिन्हें हम उपजाति कहते हैं। जैसे रोमांस और ट्युटानिक और फिर हर एक की शाखा हैं, जैसे कि पहले में से फ्रांसीसी और इटलीवाले तथा दूसरे में अंग्रेज और जर्मन।

ये प्रबंध इसलिये किये जाते हैं कि देश, काल और व्यवस्था तरह-तरह की मिल सके। जिनमें से जीवात्मा को अपने लिये चुनने में सुविधा हो। जाति-जाति के लोगों को अपनी उन्नति के लिये अलग-अलग गुण चाहने पड़ते हैं और अपने-अपने लोगों के ऐसे गुणों को बढ़ाने के लिये हर एक जाति में विशेष योग्यता होती है। हर एक देश में व्यवस्थाएं अनेक प्रकार की होती हैं कि प्रायः गिनती में नहीं आ सकती हैं। जैसे धन, दरिद्रता, अवसरों का बहुत मिलना या सर्वथा न मिलना, बढ़ने की सुविधा या तरह-तरह की कठिनाइयां। क्रमोन्नति का नियम स्वभाव से ही इन सब अनन्त व्यवस्थाओं में से चुनकर उन व्यवस्थाओं में मनुष्य को ले जाता है, जो उसकी जरूरतों के लिये उस समय पर अच्छी है।

परन्तु इस नियम के साथ ही साथ एक दूसरा नियम कर्म और कर्मफल का और लगा रहता है, जिसका पहले वर्णन हो चुका है। शायद मनुष्य के पिछले कर्म ऐसे न हुए हों कि जिनसे उसको अच्छा अवसर मिल सके। अर्थात् उसने अपने पिछले जन्मों में कोई ऐसी क्रिया चलाई हो कि जिनका निश्चित फल यह हो उसके लिये अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंधन या रुकावट पैदा हो और इन बन्धनों से उत्तम से उत्तम अवसरों के मिलने में बाधा पड़ सकती है और अपने ही पिछले कर्म के प्रताप से अब उसको कुछ घटिया दर्जे के अवसरों पर ही संतोष करना पड़ेगा। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि क्रमोन्नति का नियम अगर उसमें छेड़-छाड़ न की जाये तो हर एक मनुष्य के लिये अच्छी से अच्छी बात करेगा। परन्तु मनुष्य के ही पहले के कर्मों से इस नियम की क्रिया में बाधा पड़ जाती है।

इस बंधन के प्रसंग में एक बड़ी बात यह है कि अगर किसी मनुष्य ने किसी एक मण्डली या जनसमूह के सारे जीवात्माओं के साथ पिछले जन्मों में सम्बन्ध कर लिया है तो उनका उस पर बड़ा असर होता है और इस असर से लाभ भी हो सकता है और हानि भी। यह असर उन जीवात्माओं का होता है कि जिनके साथ उसने प्रीति या द्वेष की सहायता या विरोध की गाढ़ी गांठ बांध रखी है और यह ऐसे है कि पिछले सम्बन्धों के कारण उन जीवात्माओं से इसे फिर मिलना पड़ता है। यह ठहराने के पहले कि इसको कहां और किस प्रकार जन्म दिया जाये इसका उन जीवात्माओं के साथ जो सम्बन्ध है उस पर विचार कर लेना पड़ता है।

परमेश्वर की इच्छा यही है कि मनुष्य की क्रमोन्नति हो। परमेश्वर की इच्छा की सूचना सृष्टि की प्रकृति से होती है और इस प्रकृति का यह प्रयत्न रहता है कि मनुष्य को वही बात दी जाये जो उसकी उन्नति के लिये अच्छी से अच्छी हो। परन्तु इसमें केवल मनुष्य के पिछले पुण्यों और पिछले सम्बन्धों से हेर-फेर हो जाता है। यह बात मानी जा सकती है कि जन्म लेने पर मनुष्य को जो-जो बातें उस जन्म में सीखती हैं, वे सैकड़ों अवसर में से चाहे किसी एक अवसर में सीखी जा सकती है। इनमें से आधे या आधे से अधिक अवसरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का मेल तो उसके पिछले बहुत से और भांति-भांति के कर्मों के कारण नहीं मिल सकेगा। अब जो थोड़े से अवसर रहे उनमें से कौन सा अवसर लिया जाये, इसके निश्चय करने में यह विचार करना होता है कि उसके कुटुम्ब में या पड़ोस में कौन-कौन से जीवात्मा हैं, जिनके साथ इसको सेवा या प्रेम का बदला लेना या देना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. जीवन का उद्देश्य

दैवी प्रबन्ध में हमारे जो फर्ज हैं उन्हें पूरा करने के लिये हमको इस सारे प्रबन्ध का सामान्य वृत्तान्त ही नहीं। यह भी ब्यौरा समझ लेना चाहिये कि मनुष्य को इसमें विशेषकर क्या-क्या करना है। दैवी प्रवाह प्रकृति में उतरते उतरते गहरे से गहरे खनिज सृष्टि कंकड़ पत्थर आदि में पहुंचा, परन्तु इस समूही प्रवाह में भिन्न-भिन्न होने की अंतिम दर्जे की व्यवस्था खनिज सृष्टि में अर्थात् प्रकृति में गहरे से गहरे प्रवेश पर तो नहीं हुई, किन्तु उस अवसर पर हुई कि जब वह प्रवाह क्रमोन्नति में ऊपर चढ़ता हुआ मनुष्य सृष्टि में पहुंचा। हमको इस उन्नति के क्रम में यों तीन खण्डों का अनुभव करना है।

(क) प्रवाह का उतार जिसमें भिन्नता और स्थूलता (घनता) बढ़ती जाती है। इस खंड में आत्मा पदार्थ में लिपटती जाती है, जिससे उसमें होकर आत्मा को स्पर्शों का बोध हो सके।

(ख) प्रवाह का ऊपर चढ़ने का पहला भाग जिसमें झुकाव अधिकंतर भिन्नता की ओर होता है, परन्तु साथ ही साथ झुकाव अधिकतर आध्यात्मिकता की बढ़ती और स्थूलता के घटाव का होता है। इन खण्ड में आत्मा पदार्थ पर अधिकार जमाना सीखने लगती है और उसे ऐसा दिखायी पड़ने लगता है कि पदार्थ भी आत्मा का ही एक रूप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) प्रवाह का ऊपर चढ़ने का दूसरा भाग जिसमें कि भिन्नता बढ़ते बढ़ते अंतिम दर्जे पर पहुंच जाती है और एकता और अधिकतर अध्यात्मिकता की ओर झुकाव हो जाता है। पदार्थ में होकर स्पर्शों का बोध करना और पदार्थ में होकर अपने आपको प्रकट करना भी भली-भांति सीखकर और अपनी गुप्त शक्तियों को जगाकर अब आत्मा इस खंड में यह बात सीखती है कि ये शक्तियां परमेश्वर की सेवा में उचित रीति से कैसे काम में लाई जाये।

पहले की सारी क्रमोन्नति का अभिप्राय यह रहा है कि ईश्वरांश जीवात्मा की शक्ल में प्रकट हो जाये। फिर जीवात्मा भी नीचे उतरता हुआ अपने को लगातार शरीरों में डालकर अपनी उन्नति करता है। जो मनुष्य इस बात को नहीं समझते हैं वे जैसा कि इन शरीरों में जीवात्मा का प्रभाव होता है, उसी को आत्मा मान लेते हैं और इसलिये उसी के निमित्त जीते हैं और अपने जीवन का ढंग ऐसा बना लेते हैं कि मानो उसके क्षणिक लाभ ही उसके लक्ष्य हैं। जो मनुष्य समझता है, वह यह जानता है कि जीवात्मा का जीवन ही केवल एक मुख्य बात है और केवल इसी की उन्नति के लिये क्षणिक शरीर धारण किये जाते हैं। इसलिये जब यह निश्चित करने का समय आता है कि दो मार्गों में से कौन सा मार्ग लिया जाये तब वह साधारण मनुष्य की तरह यह नहीं सोचता है कि इन दोनों में से किससे मुझे शरीरधारी कामात्मा के वेष में अधिक सुख और लाभ पहुंचेगा, किन्तु वह यह सोचता है कि मुझ जीवात्मारूप की अधिक उन्नति किससे मिलेगी। अनुभव से वह यह बात जल्दी जान लेता है कि कोई चीज जो सबकी भलाई की नहीं है वह उसके लिये या किसी और के लिये सचमुच भलाई की कभी नहीं हो सकती है और इसलिये जल्द ही वह यह सीख लेता है कि अपने आपको सर्वथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूल जाना चाहिये और केवल वही बात मांगना चाहिये जो मनुष्यमात्र के लिये उत्तम हो। इसलिये यह खुली बात है कि उन्नति के इस दर्जे पर जिस किसी बात से एकता बढ़े और जिस किसी बात से आध्यात्मिकता बढ़े, वही हमारे लिये परमेश्वर की इच्छा के अनुकूल है और इसलिये वही हमारे लिये उचित है तथा जो कुछ भिन्नता या स्थूलता बढ़ाये, वह निःसंदेह हमारे लिये उतना ही अनुचित है। कोई-कोई विचार और वासनायें एकता करनेवाली होती हैं। जैसे कि प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, उदारता। कुछ ऐसी हैं कि जिनसे भेद पड़ता है। जैसे द्वेष, जलन, ईर्ष्या, अभिमान, निर्दयता, भय। इनमें से पहले अर्थात् प्रेमादिक तो हमारे लिये उचित हैं और दूसरे द्वेषादिक हमारे लिये अनुचित हैं।

इन सब विचारों और वासनाओं में, जो हमारे लिये अनुचित है, हमको एक विशेष बात दिखायी पड़ती हैं अर्थात् स्वार्थ और उनमें जो हमारे लिये उचित है, हमें यह दिखायी पड़ता है कि विचार, दूसरों के सानुकूल है और उनमें स्वार्थपन के विचार का अभाव है। इसलिये हमें यह दिखायी पड़ता है कि स्वार्थपन ही एक बड़ा दोष है और पूर्ण स्वार्थपने का अभाव अर्थात् पूर्ण परमार्थपन सब गुणों का शिरोमणि है। इससे हमको तत्काल एक स्थायी नियम मानने के लिये मिलता है। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक दैवी इच्छा के अनुकूल चलना चाहे, उसे अपनी कामात्मा के अर्थ या सुख का विचार अलग रख देना चाहिये और दूसरों की भलाई और आनन्द के लिये काम करते हुए केवल उस दैवी इच्छा को पूरा करने में अपने को लगा देना चाहिये। यह एक ऊंचा लक्ष्य है और इसका प्राप्त होना कठिन है, क्योंकि हमारा आचरण बहुत काल से स्वार्थपन के चले आये हैं। हम सब प्रायः अभी शुद्ध परोपकारी भाव के दर्जे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बहुत नीचे हैं और हममें अभी अवगुण इतने भरे हुए हैं तथा बहुत से सद्‌गुण अभी इतने पक्के नहीं हो पाये हैं जितना होना चाहिये। इसलिये यह प्रश्न उठता है कि उस शुद्ध परोपकारी भाव के प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये।

यहां हमें उस बड़े नियम की सहायता लेनी पड़ेगी जो कर्म और कर्मफल का है और जिसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। जैसे हम इस स्थूललोक के प्राकृतिक नियमों से निश्चय के साथ काम लेते हैं, वैसे ही हम सूक्ष्मलोक के इन नियमों से भी काम ले सकते हैं। अगर हममें अवगुण हैं तो वे अज्ञान और भोगों में रत होने के कारण धीरे धीरे बढ़ गये हैं। अब वह अवस्था आ गई है कि ज्ञान के कारण अज्ञान उठ गया है अर्थात् हमको अवगुण में दोष प्रतीत होने लगा है। इसलिये इस दोष से छुटकारा पाने का जो मार्ग है, वह हमारे सामने आ गया है।

इन सब दोषों में एक एक दोष का उल्टा एक एक सद्‌गुण है। अगर इनमें से कोई एक दोष भी हममें सिर उठाने लगे तो हमें तत्काल अपने भीतर उसके उल्टे सद्‌गुण को बढ़ाने के लिये विचारपूर्वक प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। अगर किसी मनुष्य को यह अनुभव हो जाये कि वह पहले स्वार्थी था, तो इसका अर्थ यह है कि उसने अब अपना ऐसा स्वभाव बना लिया है कि सबसे पहले अपने आप का और अपनी प्रसन्नता का विचार करे और अपने ही आराम और सुख को देखे और इसका दूसरों पर क्या असर होगा इस पर पूरा ध्यान न दे। अब उसको विचारपूर्वक ठीक इससे उलटे स्वभाव बनाने पर लग जाना चाहिये और यह नियम कर लेना चाहिये कि किसी काम के करने के पहले यह सोच लिया करे कि इसका असर उसके आस पास के लोगों पर कैसा होगा? उसे दूसरों को प्रसन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने का अभ्यास डालना चाहिये, चाहे उसको कष्ट या हानि ही क्यों न हो। इससे धीरे-धीरे उसका सहज स्वभाव पड़ जायेगा और इसको बढ़ाने से उसके स्वार्थपन का अवगुण जाता रहेगा।

अगर किसी मनुष्य को जान पड़े कि वह शंका से भरा हुआ है और सदा उसके आस-पास के लोगों पर यह आरोप लगाने को तैयार रहता है कि जो कर्म वे कर रहे हैं, उनका फल बुरा है तो उसे इस बात का सदा अभ्यास करना चाहिये कि अपने साथियों का विश्वास करे और यह समझता रहे कि उसका अभिप्राय सदा उत्तम हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि अगर कोई मनुष्य ऐसा करेगा तो उसे धोखा खाना पड़ेगा और बहुत बार उसका विश्वास झूठा निकलेगा। धोखे के डर से सदा अविश्वासी बने रहने से तो यह अच्छा है कि वह अपने साथियों का विश्वास करके धोखा खाये। इसके सिवाय विश्वास से सद्विचार उत्पन्न हो जाता है। अगर किसी मनुष्य का तुम विश्वास करोगे तो वह प्रायः यह दिखा देगा कि वह विश्वास के योग्य है, परन्तु अगर तुम किसी मनुष्य पर शंका करोगे तो वह प्रायः जल्दी ही तुम्हारी शंका को सही साबित कर देगा।

अगर किसी को अपने में लालच की आदत दिखायी पड़े तो उसे विशेष रीति से उदार होना चाहिये। अगर वह चिड़चिड़ा हो तो उसे शांति का निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। अगर उसमें कुतुहल अर्थात् दूसरों के भेदों को व्यर्थ खोज करने का व्यसन हो तो उसे इस लालसा को बार बार ध्यान रखकर रोकना चाहिये। अगर उसे उदासी के वेग आते हों तो उसे निरन्तर और चाहे कैसे प्रतिकूल अवसर क्यों न आयें प्रसन्नता का अभ्यास रखना चाहिये।

किसी मनुष्य के स्वभाव में अगर कोई अवगुण हो तो उसका अर्थ यह है कि इसके उल्टे गुण का उसकी आत्मा में अभाव है। उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवगुण को दूर करने का और उसको फिर न आने देने का सबसे छोटा रास्ता यह है कि जीवात्मा में जो अभाव अर्थात् खाली स्थान है, उसको भर दिया जाये और जो सद्गुण उभरेगा वह उसके स्वभाव में आगे के जन्मों में बराबर बना रहेगा। जीवात्मा में बुराई तो नहीं रह सकती है, परन्तु भलाई में कमी रह सकती है। जीवात्मा में केवल सद्गुण ही उभर सकते हैं और जब ये गुण अच्छी तरह से उभर आते हैं तब वे उसके सारे शरीरों में अर्थात् विचारों, वासनाओं और कर्मों में इन सद्गुणों के उल्टे अवगुण के दोष नहीं रह सकते हैं। परन्तु जीवात्मा में जहां कहीं कोई खाली स्थान पड़ी है अर्थात् कोई सद्गुण बिना खिला पड़ा हुआ है वहां उसके मन या वासनाओं में कोई ऐसी बात नहीं मिलती है कि जो उस सद्गुण के प्रतिकूल अवगुण के उगने को रोक सके और लोक में उसके आस-पास दूसरे लोगों में यह अवगुण पहले से ही होता है और मनुष्य मानो ऐसा पशु है, जो औरों की देखा देखी करने लगता है। इसलिये प्रायः यह अवगुण उसमें भी जल्दी प्रकट हो जाता है। परंतु यह अवगुण शरीरों ही का है न कि भीतर के मनुष्य का। इन शरीरों में इस अवगुण के बार-बार उठने से एक ऐसा बड़ा वेग खड़ा हो जाता है जिस पर विजय पाना कठिन होता है। परन्तु अगर जीवात्मा अपने में इसके प्रतिकूल सद्गुण को बनाने का प्रयत्न करता है तो यह बुराई जड़ से कट जाती है और न फिर इस जन्म में तथा न आगे किसी जन्म में हो सकती है।

मनुष्य जब इन सद्गुणों को अपने में उभारने का प्रयत्न करता है, तब उसे कई प्रकार की बाधा होती है, इसलिये उसे यह सीख लेना चाहिये कि इन बाधाओं को कैसे दबायें। इन बाधाओं की गिनती में आजकल दोष ढूंढ़ने की रुचि है अर्थात् किसी बात में दोष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकालना, हर एक वस्तु की अनदेखी करना, हर एक वस्तु और हर एक मनुष्य में दोष देखना। उन्नति के लिये ठीक इससे उल्टा करना चाहिये। जो मनुष्य उन्नति के मार्ग में जल्दी चलना चाहे उसे यह सीख लेना चाहिये कि हर एक वस्तु में भलाई देखे अर्थात् हर एक वस्तु में और हर एक मनुष्य में जो छिपा हुआ ईश्वर है उसको देखे। उन दूसरे लोगों को वह केवल इसी तरह से सहायता दे सकता है और केवल इसी तरह से वह उन दूसरी वस्तुओं में से अच्छा से अच्छा लाभ उठा सकता है।

दूसरी बाधा धीरज का अभाव है। आजकल हम शीघ्र उकता जाया करते हैं। अगर हम किसी काम को हाथ में लेते हैं तो उससे तत्काल फल मिलने की आशा करने लगते हैं और अगर तत्काल फल नहीं मिलता है तो हम उस काम को छोड़ देते हैं और कोई दूसरा काम करने लगते हैं। अध्यात्मिक उन्नति करने की यह प्रक्रिया नहीं है। जो यत्न हम कर रहे हैं, वह यह है कि सामान्य प्रक्रिया से जो उन्नति सैकड़ों जन्मों में होती है, वह एक या दो जन्मों में ही प्राप्त हो जाये। यह ऐसा काम नहीं है कि जिसमें तत्काल फल मिलने की आशा की जा सके। जब हम किसी बुरी आदत को उखाड़ डालने का प्रयत्न करने लगते हैं, तब हमको यह काम कठिन जान पड़ता है, इसका क्या कारण है ? इसका यही कारण हैं कि इसका व्यसन हमको शायद बीस हजार वर्षों से चला आया है और बीस हजार वर्षों की आदत एक या दो दिन में कभी नहीं मिट सकती। हमने इस आदत का वेग अत्यन्त बढ़ जाने दिया है, और जब तक हम इस वेग को नहीं दबा लें तब तक उन व्यसनों के उल्टे सद्‌गुण की ओर हम कोई बल नहीं लगा सकते हैं। यह काम एक पल में होने का नहीं है, परंतु यह निश्चय हैं कि अगर हम स्थिरता से लगे रहें तो हो जाने में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संदेह नहीं है। क्योंकि वह वेग कितना ही बड़ा क्यों न हो, परिणाम है अंतवाला। परंतु जो बल हम इसको दबाने में लगा सकते हैं, वह मनुष्य की इच्छा शक्ति का अनन्त (आत्मिक) बल है जो दिनोंदिन वर्ष-वर्ष ही नहीं, जन्म-जन्मान्तर तक प्रयत्न करने में लगा रह सकता है।

दूसरी कठिनाई यह है कि हमारे विचारों में निर्मलता नहीं होती। पश्चिमी देश के लोगों को धर्म की बातों में निर्मल विचार करने का कम अभ्यास होता है। उनके विचार गोल-मोल और बिना कटे-छटे होते हैं और इनसे अध्यात्मिक उन्नति में काम नहीं चल सकता। चाहिये तो यह कि हमारे संकल्प साफ और हमारे विचारों के आकार कटे-छटे हों। दूसरे और गुण जो चाहिये, वे शांति और प्रसन्नता है। आजकल ये गुण कम ही लोगों में मिलता है, परन्तु जो काम हम यहां करना चाहते हैं, उसमें इनके बिना कभी काम नहीं चल सकता।

स्वभाव बनाने की क्रिया ऐसी ही प्रमाणिक है, जैसे शरीर के पट्ठों के बढ़ान की। बहुधा मनुष्य जब यह देखते हैं कि उनके शरीर के पट्ठे ढीले और निर्बल पड़ गये हैं, तब यह समझ लेते हैं कि उनकी यह दशा प्रकृति से ही है और इस निर्बलता को अपने ही दुर्भाग्य की बात समझ लेते हैं। परंतु जो कोई मनुष्य के शरीर का कुछ भी हाल जानता है उसे यह खबर है कि बराबर व्यायाम करने से ये पट्ठे बलिष्ठ हो जायेंगे और सारा शरीर अच्छा बन जायेगा। ठीक इसी तरह बहुत से लोग बुरे स्वभाव के या लालची या शंकावाले या विषयी होते हैं। और जब इन दोषों के बस वे कोई बड़ी चूक की बात कर बैठते हैं या किसी की बड़ी हानि कर देते हैं, तब वे यह बहाना करते हैं कि हमारा उतावला स्वभाव है या यह कि हमारे दैव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गत से यह स्वभाव है या वह स्वभाव है और ऐसा कहकर यह प्रमाणित करते हैं कि दैवगत में उनका बस नहीं चलता है।

शरीर बनाने की तरह अपने स्वभाव बनाने में भी उपाय हर एक के हाथ में ही है। शारीरिक अभ्यास के बराबर करते रहने से पट्ठे पुष्ट हो जाते हैं और ठीक मानसिक अभ्यास बराबर करने से मनुष्य के स्वभाव में जो कोई गुण छिपा होता है, वह उभर आता है। साधारण मनुष्य यह नहीं जानता है कि वह ऐसा कर सकता है, और अगर वह देख भी ले कि ऐसा हो सकता है तो भी वह करने का साहस नहीं करता है, क्योंकि इसमें बहुत परिश्रम होता है और मन को बहुत रोकना पड़ता है। उसे कोई ऐसा बड़ा लाभ नहीं दिखायी पड़ता है कि जिसके लिये वह ऐसे कष्ट और परिश्रम का भार अपने ऊपर लेवे।

इस भार को उठाने की रुचि तो असली बात के जान लेने पर होती है। जिस किसी को बुद्धिपूर्वक यह समझ में आ जाता है कि क्रमोन्नति किस सीध में चल रही है वह उसके अनुसार चलने में अपना केवल लाभ ही नहीं समझता, किंतु उसमें अपना गौरव और आनन्द मानता है। अगर कोई मनुष्य किसी बात के करने का संकल्प कर ले तो मानो उसने उन बातों के करने का भी संकल्प कर लिया है जो उस बात के सहायक हैं, इसलिये अगर लोकोपकार करना चाहे तो उसको अपने में उन गुणों और बल को उभार लेना होगा जिनकी लोकोपकार करने के लिये जरूरत होती है। इसलिये जो मनुष्य लोक का सुधार करना चाहता है उसे सबसे पहले अपना सुधार करना चाहिये। उसे यह स्वभाव डालना चाहिये कि अपने लेने पर स्वत्व आग्रह करने की आदत सर्वथा छोड़ दे और अपने कार्य कर्मों के भार को तत्परता से उतारने में सर्वथा लग जाये। उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सीख लेना चाहिये कि उसके साथियों के संग उसके जो सम्बन्ध हैं, वे सब उनको सहायता करने के लिये या किसी न किसी प्रकार उनकी भलाई करने के लिये उसे अवसर मिले हैं।

जो मनुष्य इन बातों को समझ कर अभ्यास करता है, उसे यह अनुभव हो जाता है कि विचार की शक्ति अत्यन्त प्रबल है और इसको पूरे बस में रखना चाहिये। सब कर्म सोच-विचार से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अगर कर्म बिना विचार के हो भी जाये तो भी उसकी सहज उत्पत्ति उन विचारों, इच्छाओं और वासनाओं से है कि जिनको मनुष्य ने अपने में पहले के दिनों में अति विस्तार से बढ़ने दी है। चतुर मनुष्य इसलिये अपने विचार पर बड़ी चौकसी रखता है, क्योंकि यह विचारशक्ति उसके लिये एक प्रबल हथियार है, और उस पर इस बात का भार है कि इस हथियार से उचित काम लिया जाये। उसका यह काम है कि अपने मन को बस में रखे जिससे यह न तो दुंद मचाने पाये और न इससे स्वयं उसको और दूसरों को हानि पहुंचने पाये। चतुर मनुष्य का यह भी काम है कि वह अपनी विचारशक्ति को बढ़ाये, क्योंकि इससे बहुत सी असली और चलाकर भलाई करने का काम हो सकता है। इस तरह अपने विचार और कर्मों को बस में रखकर और सब बुराइयों को अपने में से निकालकर और अपने सद्गुणों को उघाड़कर मनुष्य अपने साथियों से जल्दी बहुत ऊंचा बढ़ जाता है और उनमें इसकी इस बात की चौड़े प्रतिष्ठा हो जाती है कि यह बुराई के दबाने के लिये भलाई की ओर और जड़ता को दबाने के लिये उन्नति की ओर चल रहा है।

श्वेत महामंडल के महर्षि, जिनके हाथों में जगत् की उन्नति का भार है, सदा ऐसे योग्य मनुष्यों की तलाश में इसलिये रहते हैं कि उनको सिखाकर इस बड़े कार्य में उनसे काम लें। ऐसा कोई मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो उस पर उन महात्माओं की दृष्टि पड़े बिना नहीं रहती और वे अपने कार्य में उससे काम लेने लग जाते हैं। अगर वह अच्छा और काम का निकले तो वे जल्दी उसे अवसर इस बात का दे देते हैं कि वह चाहे तो उम्मीदवार बना लिया जाये और उसे विशेष शिक्षा दी जाये, जिससे वह इन महात्माओं को जगत् के इस कार्य में सहायता देकर एक दिन उन जैसा हो जाये और उनके प्रतापशाली महामंडल में भरती हो जाये।

परन्तु ऐसे प्रतापशाली पद के लिये केवल साधारण भलाई से काम नहीं चलता। यह सच है कि सबसे पहले मनुष्य को भला होना चाहिये, नहीं तो उससे काम लेने का विचार करना ही व्यर्थ होगा। परन्तु भला होने के साथ ही साथ उसे बुद्धिमान् और दृढ़ भी होना चाहिये। जरूरत एक बड़ी आध्यात्मिक शक्ति की है न कि केवल भलमनसाहत की। उम्मीदवार को सब साधारण दोष ही नहीं छोड़ने होते हैं किन्तु दृढ़ता के साथ सद्‌गुण भी प्राप्त करने होते हैं, नहीं तो उसे स्वीकार होने की आशा करना व्यर्थ है। भूल चूकों से भरी हुई और स्वार्थी रहन गत से अब उसे नहीं रहना पड़ेगा, किन्तु उसे ऐसे चतुर जीवात्मा की तरह रहना पड़ेगा कि जिसको यह समझ में आ गया हो कि इस जगत के विशाल प्रबंधरूपी नाटक में उसे क्या खेल खेलना है। उसे अपने आप को सर्वथा भूल जाना होगा। उसे संसारी लाभ या सुख या बढ़ोत्तरी का सारा विचार छोड़ देना पड़ेगा। उस काम के लिये जो कि करना है उसे सर्वस्व त्यागने को और सबसे पहले अपने आपको त्यागने को तैयार होना चाहिये। वह संसार में रहेगा परंतु संसारी नहीं रहना होगा। उसे लोक-लाज की कुछ भी चिंता न होनी चाहिये। लोक की सेवा के लिये उसे अपने को मनुष्य से कुछ ऊंचा बना लेना चाहिये। प्रसन्न मुख, प्रफुल्लित चित्त और दृढ़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर उसे यह चाहिये कि वह केवल दूसरों के अर्थ ही जीवे और लोक में परमेश्वर के प्रेम का सोता (श्रोता) बने। यह लक्ष्य ऊंचा तो है किन्तु अति ऊंचा नहीं है और यह अनहोना नहीं है क्योंकि ऐसे मनुष्य मौजूद हैं, जो इसको प्राप्त कर चुके हैं।

छिपी हुई शक्तियों को अब कोई मनुष्य इतना उघाड़ ले कि गुरुदेवों का ध्यान उसकी ओर जाये तो उनमें से कोई न कोई उसको प्राय: जांचने के लिये उम्मीदवार बना लेते हैं। यह जांच प्राय: सात वर्ष की होती है, परन्तु गुरुदेव उचित समझें तो उसको घटा बढ़ा सकते हैं। यह समय पूरा हो जाने पर अगर उसका काम ठीक रहा है, तो वह ऐसा चेला बन जाता है जिसे प्राय: स्वीकार किया हुआ चेला कहते हैं। उससे गुरुदेव के भाव उस पर लगातार पड़ते रहते हैं और हर एक बात को जिस भाव से गुरुदेव देखते हैं, यह भी धीरे-धीरे उसी भाव से देखने लग जाता है। फिर कुछ समय के पीछे अगर यह पूर्ण विश्वास के योग्य निकलता है तो उसे गुरुदेव और भी नजदीक ले लेते हैं और तब यह गुरुदेव का पुत्र कहलाने लगता है।

इन तीनों कक्षाओं में उसका सम्बन्ध केवल अपने गुरुदेव से है न कि सारे श्वेत महामंडल से। इस महामंडल में तो कोई मनुष्य जब ही भरती होता है तो वह बड़ी दीक्षाओं में से पहली दीक्षा के योग्य हो जाता है।

यह महामंडल उन महर्षियों का है जो जगत के अधिपति हैं, इसमें भरती होना मानो मनुष्य के उन्नति के क्रम में तीसरी बड़ी अवस्था है। इनमें से पहली अवस्था वह थी जब यह मनुष्य बना अर्थात् जब यह पशुसृष्टि में से निकलकर जुदा हुआ और अहंता को प्राप्त होकर कारण शरीर पाया। दूसरी अवस्था वह है कि जिसे ईसाइयों के यहां परिवर्तन और हिन्दुओं के यहां विवेक की प्राप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बौद्धों के यहां मन के द्वारों का खुलना कहते हैं। यह वह अवस्था है कि जब मनुष्य जीवन की बड़ी बड़ी बातों का अनुभव करता है और स्वार्थ के कार्यों से मुड़कर ईश्वरी इच्छा के अनुसार क्रमोन्नति के बड़े प्रवाह के साथ साथ विचारपूर्वक चलता है। तीसरी अवस्था इन सबमें बड़ी है, क्योंकि जिस दीक्षा से कि वह इस महामंडल में भरती होता है उससे यह बात भी पक्की हो जाती है कि अब दैवी इच्छा को नियत समय में पूरे करने में वह चूक नहीं सकेगा। इसलिये जो लोग सि अवस्था पर पहुंच जाते हैं वे ईसाइयों के यहां 'विशिष्ट' 'रक्षित' 'निर्भय' और बौद्धों के यहां 'श्रोतापति' अर्थात् वे 'जो नदी की धार में प्रवेश' हो गये हैं, कहलाते हैं। क्योंकि जो लोग इस अवस्था पर पहुंच जाते हैं उनके लिये यह बात भी पूरी निश्चित हो जाती है कि वे इससे भी ऊपर की अवस्था पर पहुंच जायेंगे अर्थात् मुक्ति अथवा महात्मा के पद पर जहां से वे उन्नति के उस क्रम में चले जाते हैं कि जो मनुष्य की उन्नति के क्रम से परे हैं।

जो मनुष्य कि महात्मा या जीवनन्मुक्त हो जाता है वह हकारे लोक की शैली के लिये जो ईश्वर की नियत की हुई उन्नति है उससे पार हो जाता है। उसे अब इस कल्प के मध्य में ही वह अवस्था प्राप्त हो गयी है कि जो कि मनुष्य को इस कल्प के अन्त में प्राप्त होने वाली थी। इसलिये अब जो इस कल्प का समय बचा उसे चाहे वह यहां मनुष्यों की सहायता में लगायें चाहे दूसरी ऊंची सृष्टियों के दिव्यतर कार्यों में। जिस मनुष्य को अभी दीक्षा नहीं हुई है उसे हमारी सृष्टि में पिछड़कर और इसके आगे की आने वाली सृष्टि में पड़ जाने का भय अभी बना हुआ है। अर्थात् यह वह दशा है कि जिसको ईसामसीह ने 'कल्प भर का दंड' कहा है जिसका कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्था भूल से 'अनंत नर्क दंड' कर लिया गया है। इस कल्पभर के लिये पिछल जाने के भय से अर्थात् इस युग में या इस शैली में या इस स्वर्ग में पिछल जाने के भय से वह मनुष्य जो दीक्षा पा जाता है 'अभय' हो जाता है। 'वह उस धार में पड़ जाता है' जो उसे इसी युग में मोक्ष के पद तक ले जायेगी, यद्यपि यह अब भी सम्भव है कि वह अपने कर्मों से उस मार्ग में कि जिस पर चल रहा है देरी कर दे या जल्दी कर दे।

यह पहली दीक्षा प्रवेशिका-परीक्षा के समतुल्य है, जिससे मनुष्य किसी विश्वविद्यालय में भरती हो जाता है और मोक्ष का प्राप्त होना मानो विश्वविद्यालय के क्रम के समाप्त होने पर डिग्री बी.ए. आदि की उपाधि प्राप्त करना है। इसी उपमा से इस क्रम में आदि अंत के बीच में तीन और परीक्षाएं होती हैं जिन्हें प्राय: दूसरी तीसरी और चौथी दीक्षा कहते हैं, और इससे आगे महात्मा या ऋषि पद की पांचवीं दीक्षा होती है। बौद्धों की पुस्तकों में उन बन्धनों के नाम गिनाये हैं कि जो छोड़ने पड़ते हैं, उन नामों के अर्थ पर ध्यान देने में इस ऊंची उन्नति के क्रम का सामान्य बोध हो सकता है। इन बंधनों से अभिप्राय उन अवगुणों से है कि जिन्हें मनुष्य को इस मुक्ति के मार्ग में त्याग करना पड़ता है। वे ये हैं—अनेकता का भ्रम, शंका या संशय, दंभ, विषयासक्ति, द्वेष, इसलोक या परलोक में जीने की इच्छा, अभिमान, क्रोध और अविद्या। जो महात्मा के पद को पहुंच जाता है उसके शरीर की (अखला की) सारी उन्नति समाप्त हो जाती है और आगे उसकी उन्नति केवल ज्ञान की वृद्धि और अधिक चमत्कारी अध्यात्म शक्तियों की बढ़ोत्तरी में होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. युगों का वृत्तांत

जिस सृष्टि क्रम में हमारी पृथ्वी एक अंग है, वह हमारे सौर्य जगत् में अकेली नहीं है किन्तु उस जगत में ऐसे ऐसे सब मिलाकर ग्रहों के दस क्रम हैं, जिनमें प्राय: एक सी अलग-अलग उन्नति हो रही है। ऐसा हर एक क्रम गोलों की माला में चलता है, और हर एक क्रम में गोलों की माला सात बार प्रलय हो हो कर प्रादुर्भाव प्रकट होती है। हर एक क्रम में और उसके माल के हर एक प्रादुर्भाव में विधान यह होता है कि यह पहले तो पंक्ति पंक्ति करके स्थूलता में बढ़ता जाता है और जब अत्यन्त स्थूल हो चुकता है, तब फिर पंक्ति-पंक्ति करके सूक्ष्म होता है।

हर एक माल में सात गोल होते हैं और इन गोलों में और मालों में यही नियम होता है कि पहले तो ये उतरते हुए स्थूलता में बढ़ते होते जाते हैं और फिर चढ़ते हुए स्थूलता से निकलते जाते हैं अर्थात् सूक्ष्म होते जाते हैं। इसके समझाने के लिये हम उदाहरण के लिये उस माल को लेते हैं कि जिसमें हमारी पृथ्वी है। इस समय यह माल अपने चौथे अर्थात् अत्यन्त स्थूल प्रादुर्भाव में है और इसलिये इसके सातों गोलों में से तीन गोले स्थूल हैं और दो वासना-लोक के और दो अशुद्ध मन के अणुओं के बने हुए हैं। दैवी जीवन प्रवाह (तरंग) इस माल में एक गोले से दूसरे गोले में लगातार जाता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने पृथ्वी के सृष्टि क्रम के सात मालाओं का दृश्य

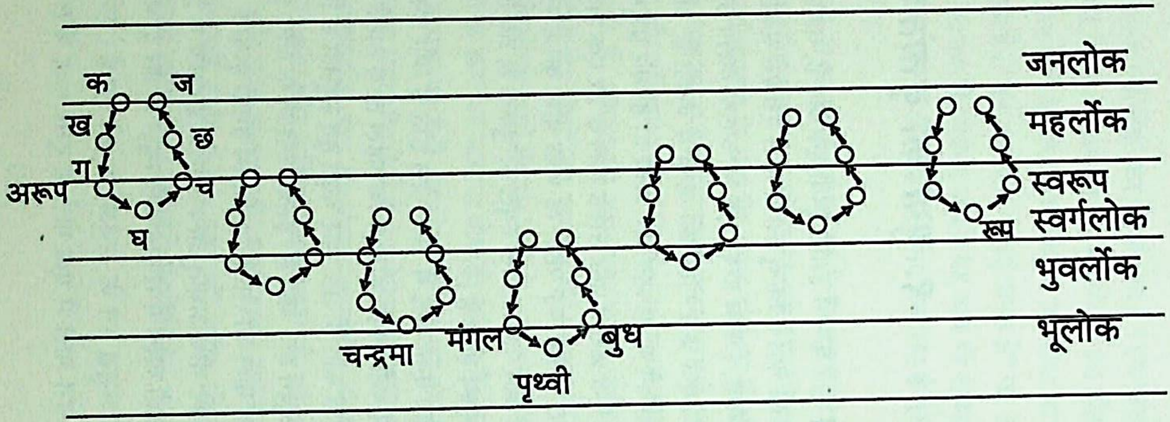

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और यह सबसे ऊंचे अर्थात् सूक्ष्म गोले से चलता है और धीरे-धीरे उतर कर सबसे नीचे के गोले में आ जाता है, फिर उसी स्तर तक चढ़ जाता है जहां से यह चला था।

इन सात गोलों का नाम सुविधा के लिये क्रम से क, ख, ग, इत्यादि अक्षरों और प्रादुर्भाव को गिनती पर रखे गये हैं, जैसे हमारे माल का यह चौथा प्रादुर्भाव है तो इसमें पहला गोला ४ क, दूसरा ४ ख, तीसरा ४ग, चौथा अर्थात् अपनी पृथ्वी ४ घ इत्यादि।

इसमें से हर एक गोल स्थूल नहीं है। ४ क में मनलोक से नीचे कोई अणु नहीं है, और मनलोक से ऊंचे के सब लोकों में इस ४ क गोल के प्रतिरूप हैं, परन्तु मनलोक से नीचे इसका कोई भी प्रतिरूप नहीं है। ४ ख वासना-लोक में है, परन्तु ४ ग स्थूल है। दूरबीन से हमको दिखायी पड़ता है और यह वही ग्रह है कि जिसको हम मंगल कहते हैं। ४ घ का गोला यह हमारी ही पृथ्वी है जिस पर कि इस माल की जीवन-तरंग आजकल चल रहा है। गोला ४ च वह ग्रह है जिसको हम बुध कहते हैं और यह भी स्थूललोक में है। गोला ४ छ वासना-लोक में है और यह चढ़ाई पर है और इसके समान गोला उतरती ओर में ४ ख का है। गोल ४ क की भांति गोला ४ ज का भी सबसे नीचे अथवा सबसे गाढ़ा रूप मनलोक के नीचे भाग में है। इससे यह जान पड़ेगा कि इस माल में क्रम से गोले अधम मनलोक से आरम्भ होकर वासना-लोक में होकर स्थूललोक में उतरते हैं और फिर चढ़ते हुए वासना-लोक में होकर अधम मनलोक में पहुंचते हैं।

एक माल में जैसे गोलों का क्रम पहले स्थूल में उतरता है और फिर उससे निकलकर चढ़ता है, ठीक वैसे ही माल के प्रादुर्भावों के क्रम में होता है। (देखें नक्शा) चौथे प्रादुर्भाव का व्यवस्था का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णन तो यह हो चुका, अब तीसरे प्रादुर्भाव का व्यवस्था का वर्णन तो यह हो चुका, अब तीसरे प्रादुर्भाव की ओर दृष्टि डालने से हमें यह दिखायी पड़ता है कि इसका आरम्भ अधम मनलोक से नहीं होता, किन्तु उत्तम मनलोक से। गोले ३ क और ३ ज दोनों उत्तम लोक के अणुओं के हैं और गोले ३ ख और ३ छ, अधम मनलोक पर है। गोले ३ ग और ३ च, वासना-लोक के हैं, और अकेला एक गोला ३ घ, स्थूल लोक में है और प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है। हमारे माल का यह तीसरा प्रादुर्भाव बहुत काल पहले समाप्त हो चुका है, परन्तु इस स्थूल ३ घ गोले का मृतक शरीर अब भी हमको दिखायी पड़ता है जो कि हमारा मरा हुआ ग्रह चन्द्रमा है और इसी कारण से यह तीसरा प्रादुर्भाव प्रायः चन्द्रमा का माल कहलाता है।

हमारे माल का पांचवा प्रादुर्भाव, जिसके आने में अभी बहुत समय है, तीसरी माल के समान होगा। उसमें ५ क और ५ च गोले दोनों उत्तम मन के अणुओं के बनेंगे और गोले ५ ख और ५ छ अधम मन के तथा गोले ५ ग और ५ च वासना-लोक के अणुओं के बनेंगे एवं अकेला एक गोला ५ घ, स्थूल लोक में होगा। अलबत्ता यह ग्रह ५ घ अभी बना नहीं है।

इस माल के और प्रादुर्भाव रहे उनमें भी यही सामान्य नियम पाया जाता है कि स्थूलता धीरे-धीरे घटती जाती है। २ क, २ ज, ६ क और ६ ज, ये सब बुद्धिलोक में है। २ ख, २ छ, ६ ख और ६ छ, सब उत्तम मनलोक में हैं, २ ग, २ च, ६ ग, ६ च, अधम मनलोक में हैं और २ घ, ६ घ वासना-लोक में है। इसी प्रकार १ क, १ ज, ७ क, ७ ज आत्मिक लोक के और १ ख, १ छ, ७ ख, ७ छ बुद्धिलोक के और १ ग, १ख और ७ ग, ७ च उत्तम मनलोक में और १ घ और ७ घ अधम मनलोक में है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तरह यह मालूम होगा कि यह बात किसी एक माल के भीतर गोलों के क्रम में ही नहीं है कि जीवन प्रवाह स्थूल में क्रम से उतरता है और फिर उसमें से निकलकर चढ़ता है, किन्तु माल के प्रादुर्भावों के क्रम में भी ठीक ऐसा ही होता है।

हमारे सौर्य जगत् में आजकल १० सृष्टिक्रम चल रहे हैं, परन्तु उनमें से केवल सात ऐसी अवस्था में हैं कि उनमें के ग्रहों में से कोई न कोई इस स्थूल लोक में भी है। वे सृष्टिक्रम ये हैं—१.बलकन नामक अपरिचित ग्रह का सृष्टिक्रम, जो सूर्य से बहुत नजदीक है और जो तीसरे प्रादुर्भाव अर्थात् तीसरी माल में है। इसीलिये उसमें एक ही गोला स्थूल में दिखायी पड़ता है। २. शुक्र ग्रह का सृष्टिक्रम, जो अपने पांचवीं माल में है और इसीलिये जिसमें केवल एक ही गोला स्थूल में दिखायी पड़ता है, ३. सृष्टिक्रम, पृथ्वी, मंगल और बुध का है जिसमें तीन ग्रह दिखायी पड़ते हैं अर्थात् पृथ्वी मंगल और बुध इसका कारण यह है कि यह सृष्टिक्रम चौथी माल में है। ४. बृहस्पति का, ५. शनिश्चर का, ६. उरेनस का, जो तीनों अपने तीसरे माल में है और ७. नैपच्यून और बिन नाम के दो और ग्रहों का जो नैपच्यून की परिधि से परे हैं, ये चौथी माल में है और इसलिये इसमें हमारी पृथ्वी की तरह से तीन स्थूल ग्रह है।

किसी एक माल के प्रादुर्भाव में जिसको कि एक माल (एक मन्वन्तर या युग) कहते हैं। दैवी जीवन-प्रवाह (तरंग) उस माल के सातों ग्रहों में होकर सात बार घूमता है और ऐसे हर एक फेरे को आवृत्ति या परिक्रमा कहते हैं। जीवन-प्रवाह किसी एक गोले अर्थात् ग्रह पर जितनी देर ठहरता है उसे ग्रह जीवन-काल कहते हैं और इस एक ग्रह जीवन के काल में मनुष्यों की सात बड़ी मूल जातियां होती हैं। जैसा कि पहले समझा चुके हैं। मूल जातियों में उपजातियां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उपजातियों में शाखा जातियां होती हैं। सुविधा के लिये हम इसकी नीचे लिखी हुई सारिणी दे रहे हैं—

७ शाखा जातियों की	१ उपजाति होती है।
७ उपजाति की	१ मूलजाति (द्वीप)
७ मूल जातियां (द्वीपों)	१ ग्रहजीवन
७ ग्रहों की	१ आवृत्ति (परिक्रमा)
७ आवृत्तियों का	१ (माल) मन्वन्तर
७ मन्वन्तरों का	१ सृष्टिक्रम
१० सृष्टिक्रमों का	१ हमारा सौर्यजगत् है।

चौथे युग की चौथी आवृत्ति के चौथे ग्रह की चौथी मूलजाति सृष्टिक्रम के बीचों-बीच होती है और हम अभी इस बीच के स्थान से कुछ ही आगे बढ़ पाये हैं, हमारी आर्यजाति चौथे ग्रह की पांचवीं मूल जाति है, इसलिये सृष्टिक्रम का ठीक मंझ पिछली मूल जाति (अटलांटियन के समय में) था। इसलिये सारी मनुष्य जाति अपने उन्नति के क्रम में मध्य से कुछ ही आगे है और वे थोड़े से जीवात्मा जो महात्मा पद अर्थात् इस क्रमोन्नति की समाप्ति के नजदीक आ पहुंचे हैं, वे दूसरे मनुष्यों से बहुत ही आगे बढ़े हुए हैं।

वे इतने आगे कैसे हो गये? इसका उत्तर यही है कि कोई-कोई तो केवल यों आगे हो गये कि उन्होंने श्रम अधिक किया है और कोई-कोई यों कि और कारणों के सिवाय उन्होंने श्रम भी अधिक किया है, परन्तु प्राय: वे पुराने जीवात्मा हैं। क्योंकि वे पशु-सृष्टि में से अलग होकर औरों से पहले मनुष्य बने और इसलिये उन्हें मनुष्य अवस्था में उन्नति करने का अधिकतर समय मिल चुका है।

ईश्वर से जो कोई जीवन-प्रवाह निकलता है उसे प्राय: एक एक माल अथवा युग का समय हर एक जीव सृष्टि में लगता है। जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि वह प्रवाह जो हमारे पहले माल में पहले भूतसर्ग में था, वह दूसरी माल में दूसरे भूतसर्ग में आया और तीसरी अर्थात् चन्द्र की माल में तीसरे भूतसर्ग में आया और अब इस चौथे माल में खनिज सृष्टि में है। आगे जो पांचवीं माल होगी उसें यह वनस्पति की सृष्टि और और छठे माल में पशुसृष्टि में आयेगा और सातवीं माल में इसे मनुषअय का दरजा प्राप्त हो जायेगा।

इससे यह बात निकलती है कि स्वयं हम पहली माल में खनिज दूसरी माल में वनस्पति और चन्द्रमाल में पशुसृष्टि में थे। चन्द्रमाल में हममें से कोई-कोई मनुष्य बन गये थे और इसलिये हम मनुष्य होकर इस पृथ्वी की माल में आ सके थे, दूसरे लोग जो हमसे कुछ पीछे थे, उन्हें मनुष्य का दर्जा प्राप्त नहीं हो पाया था, इसलिये उन्हें मनुष्य का दर्जा प्राप्त होने के पहले हमारी माल में थोड़े समय के लिये पशुओं में पैदा होना पड़ा।

परन्तु सब मनुष्य हमारी इस माल में एक संग नहीं आये। जब चन्द्रमाल समाप्त हुई, तब उसके मनुष्य एक अवस्था में नहीं, किंतु कई ऊंची-नीची अवस्था में थे। इस चन्द्रमाल के लिये जो अन्तिम लक्ष्य नियत किया हुआ था, वह महात्मा या ऋषि का पद नहीं था, किन्तु अपने यहां की चौथी (अर्हत) की दीक्षा के समान था। जो इसको प्राप्त हो गये थे वे प्राय: ब्रह्मविद्या की पुस्तकों में चन्द्राधिपति कहलाते हैं और इन्हें अधिकार था कि सेवा करने के लिये जो सात रास्ते थे, उनमें से चाहे कौन सा रास्ता चुन लें। इन रास्ताओं में केवल एक ऐसा था जिसमें होकर वे, या यों कहें कि उनमें से थोड़े से हमारी इस पृथ्वी की माल में पहले-पहल की मनुष्य जातियों के लिये रास्ता बतलाने और उपदेश करने को आये। चन्द्रमाल के बहुत से मनुष्य (बहुत बड़ा भाग) इस दर्जे पर नहीं पहुंच पाये थे. और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसलिये इन्हें हमारी पृथ्वी की माल पर मनुष्य होकर ही आना पड़ा था। इसके सिवाय चन्द्रमाल की पशुसृष्टि का बहुत सा भाग मनुष्य बनने ही को था और कुछ उनमें से मनुष्य बन भी गये थे परन्तु बहुत से नहीं बन पाये थे। इनको पृथ्वी की माल पर पशुओं में कुछ और जन्म लेने की जरूरत थी। परंतु हाल इनके वृत्तान्त को छोड़े देते हैं।

मनुष्यों में भी कई स्तर थे और इस पृथ्वी के माल पर वे किस तरह बंटे थे, इसका कुछ वर्णन करना उचित होगा। यह सामान्य नियम हैं कि जो कोई किसी माल में या किसी ग्रह पर या किसी मूल जाति में ऊंचे से ऊंचे पद को पालते हैं, वे दूसरी माल, ग्रह या मूल जाति में आरंभ में ही पैदा नहीं हो जाते हैं। पहले पहल के नीचला स्तर सदा उन जीवात्माओं के लिये होते हैं, जो पिछड़ जाते हैं। जब ये बहुत कुछ उन्नति कर चुकते हैं और उन दूसरों की कक्षा के नजदीक होते हैं कि जो इनसे अच्छे थे, तब ये दूसरे जीवात्मा भी जन्म लेकर उनसे फिर मिल जाते हैं। अर्थात् ऐसा मालूम होता है कि उन्नति के क्रम को किसी भाग का चाहे वह जाति हो या ग्रह हो या माल हो प्रायः पहले का आधा काल इस बात में ही बिताया जाता है कि जो मनुष्य पिछल गये हैं वे इनसे श्रेष्ठतर जो मनुष्य हैं उनकी कक्षा तक लाये जायें, फिर वे श्रेष्ठतर मनुष्य भी जो कि अभी तक मनलोक में बड़े सुख से आराम कर रहे थे दूसरों के साथ जन्म ले लेते हैं और फिर माल की समाप्ति तक उनके साथ चले जाते हैं।

चन्द्र से जो जीवात्मा सर्वप्रथम हमारी पृथ्वी पर आये, वे किसी रीति से सबसे बढ़े हुए नहीं थे। सच तो यह है कि हम यह कह सकते हैं कि वे उन सबमें जिन्होंने मनुष्य का दर्जा प्राप्त कर लिया था, सबसे नीचे थे अर्थात् पशु मनुष्य थे। जब वे उस माल में आये जिसके नये ग्रह अर्थात् गोल ताजा ही ताजा बने थे उन्हें जीव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की भांति-भांति की सृष्टियों योनियों में शक्ले स्थापित करनी पड़ी। यह नये माल में पहली आवृत्ति के आरंभ में ही करना होता है और उसके पीछे नहीं हो सकता है क्योंकि जीवन प्रवाह किसी एक समय में माल के सातों गोलों में से किसी एक में ही मुख्यता से इकट्ठा रहता है, यद्यपि और गोलों में से जीवन पूरा-पूरा निकल नहीं जाता है। जैसे उदाहरण है—हाल में हमारे माल में जीवन-प्रवाह इस पृथ्वी पर इकट्ठा है, परन्तु हमारे माल के दूसरे दो स्थूल गोलों मंगल और बुध में अब भी जीवन-प्रवाह बना हुआ है। उनमें अब भी मनुष्य पशु और वनस्पति की आबादी है और इसलिये जबकि जीवन प्रवाह फेरा करता हुआ फिर इन दोनों ग्रहों में से किसी एक में पहुंचा तो नई शक्ल नहीं बनानी पड़ेगी। पुराने नमूने पहले से वहां हैं ही और तब केवल इतना ही करना होगा कि एक साथ चमत्कार से वंशवृद्धि होने लग जायेगी, जिससे तरह-तरह की जीवन सृष्टिया (योनियां) की संख्या बढ़ेगी और उनमें भेद पैदा हो जायेंगे। इससे आबादी स्थिर रहने के बदले बहुत जल्दी बढ़ेगी।

इस तरह से चंद्र की माल से पशु-मनुष्य अर्थात् जो सबसे नीची कक्षा के मनुष्य थे, उन्होंने पृथ्वी के माल में जाकर पहली बार में शक्लों के नमूने रचे। इनसे लगते हुए पीछे चंद्र के ऊंचे से ऊंचे पशु आये, जो इन नये बनाये हुए शक्लों के नमूनों में जा बसने को जल्द तैयार हो गये। पृथ्वी के माल के सातों गोलों में जो दूसरा फेरा हुआ उसमें चंद्रमा के पशु-मनुष्य अर्थात् चन्द्रमा के सबसे नीचे दर्जे के मनुष्य इस पृथ्वी के मनुष्य जाति के नायक (मुखिया) हुए और पीछे चंद्रमा के ऊंचे से ऊंचे पशुओं से हमारी पृथ्वी के इस मनुष्य जाति में नीचे के स्तर बने। पृथ्वी के तीसरे फेरे में यही हाल रहा, अर्थात् चंद्रमा के बहुत से पशु अहंता प्राप्त करके मनुष्यों में मिलते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये, यहां तक कि तीसरे फेरे के मध्य में इसी घ ग्रह पर जिसको हम पृथ्वी कहते हैं, एक ऊंची कक्षा के मनुष्य अर्थात् चंद्रमा की दूसरी कक्षा के मनुष्यों ने आकर जन्म लिया और तत्काल मुखिया बन गये।

जब चौथा अर्थात् हमारा वर्तमान चक्र आया, तब चंद्रमा के पहले स्तर के मनुष्यों के दल के दल हमारे यहां आये। ये चंद्रमा के अच्छे से अच्छे और उत्तम से उत्तम कक्षा के थे जो कि थोड़ी ही कसर के कारण चंद्रमा में मुक्त होते रह गये थे। इनमें से कोई कोई तो चंद्रमा में ही दीक्षा के पथ में प्रवेश कर चुके थे, इसलिये उन्होंने इस पथ को बहुत जल्द समाप्त कर लिया और महात्मा बन गये तथा पृथ्वी से आगे चले गये। थोड़े ऐसे थे जो इतने बढ़े हुए नहीं थे, उन्होंने भी प्रायः हाल में अर्थात् इन पिछले कई हजार वर्षों के भीतर मुक्ति प्राप्त कर ली है और ये ही आजकल के मुक्त पुरुष (महात्मा) हैं। हमलोग जो कि अब मनुष्यों में ऊंची जातियों में है। इन मुक्त पुरुषों से कई स्तर पीछे के थे, परंतु यह अवसर हमें भी है कि अगर हम चाहें तो हम भी यों ही इनके पीछे-पीछे जा सकते हैं।

जिस क्रमोन्नति का हम अभी वर्णन करते आये हैं वह स्वयं जीवात्मा की उन्नति है, या यों कहा जाये कि मनुष्य के जीव की उन्नति है। परंतु साथ ही साथ शरीर की उन्नति भी होती आई है। पहिले फेरे (चक्कर) में जो शक्ल बनी थी उनमें और उन शक्लों में जिनका अब हमें परिचय है, बड़ा अंतर था। सच तो यह है कि जो शक्ले स्थूल पृथ्वी पर पहले बनी थी उनको हम प्रायः शक्ल ही नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वे केवल प्राणमय (ईथर) अणुओं की बनी हुई थीं और प्रायः बेडोल और चलते हुए धुमले बादलों से मिलती हुई होती थी। दूसरे फेरे में वे पूरी स्थूल हो गईं, परंतु फिर भी बेडौल और ऐसी हल्की थीं कि हवा के झोंकों से उड़ती फिरती थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह बात तीसरे चक्र में ही हुई कि मनुष्य की आजकल की शक्लों से ये शक्लें कुछ मिलने लगीं। आजकल जैसे मनुष्यों के शरीर का जन्म होता है, उससे उन पहले के मनुष्यों के शरीर के जन्म लेने का ढंग निराला था और पशु वनस्पति आदि सृष्टियों (योनियों) के बहुत नीचे के स्तरों में, जो आजकल जन्म लेने का ढंग है, से यह बहुत मिलता हुआ था। उन पहले के दिनों में हर मनुष्य के शरीर में पुरुष और स्त्री दोनों के अंग होते थे और पुरुष और स्त्री ठीक-ठीक अलग तो तीसरे चक्र के बीच के लगभग से होने लगे। तब से अब तक बराबर मनुष्य के शरीर की शक्ल आजकल के मनुष्यों के शरीर के ढंग पर उन्नति करती चली आई है, अर्थात् पहले से बराबर छोटी और अधिक गठी हुई होती आई है और झुककर चलने और रेंगने के बदले सीधा खड़ा होना सीखती आई है और पशुओं के शरीरों से जिनमें से कि ये निकली थी प्रायः इसमें अंतर पड़ता चला आया है।

इस क्रमोन्नति का साधारण नियम एक बार अद्‌भुत तरीके से तोड़ा गया, वह वर्णन करने के योग्य है। अपने इस पृथ्वी पर इस चौथे फेरे में क्रमोन्नति की सरल और सीधी परिपाटी एक बार उठा दी थी। यह बीच के फेरे का बीच का गोला था इस गोले के मध्य में जब उन्नति का प्रवाह ठीक अपने लक्ष्य पर पहुंचा, तब एक बड़ा उपाय सोचा गया और एक विशेष युक्ति इस प्रयोजन से रची गई है कि जितनों को हो सके उतनों को एक अंत का अवसर और मिल जाये, नहीं तो इस लक्ष्य के निकल जाने पर इतना विलम्ब हो जाता है कि फिर चंद्र के पशुओं को अहंता अर्थात् मनुष्यपद प्राप्त होना असम्भव हो जाता। यह समय पहली और दूसरी मूलजातियों का था, परंतु इनके बदले अब दूसरों के पहले और दूसरे फेरों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यवस्था कुछ समय के लिये फिर बता दी गई, क्योंकि ऐसी व्यवस्था से पहले के चक्रों के समय में ये उनकी तीसरे चक्र में जो अधिक अनुभव हुआ उसके सहारे से उनमें से कोई अब ऐसे लाभ उठाने के योग्य बन गये थे। इसलिये दरवाजा बंद होते-होते ये सब घुस आये और निकृष्ट स्तर के मनुष्य बन गये। इसमें संदेह नहीं कि अपने इस युग में मनुष्यों के किसी ऊंचे दर्जे तक ये नहीं पहुंचेंगे, परंतु इतना तो हो ही जायेगा कि जब आगे किसी दूसरे युग में वे फिर उद्योग करेंगे तो यहां के मनुष्यता का थोड़ा सा अनुभव भी वहां उनके काम आयेगा।

हमारे पास के शुक्र के ग्रह से हमें जो सहायता मिली, इससे पृथ्वी पर हमारी उन्नति में बहुत बड़ी वृद्धि हुई, शुक्र आजकल पांचवीं माल (मन्वंतर) के सातवें चक्र में है, इसलिये उनके निवासी क्रम से हमसे डेढ़ माल आगे हैं। वहां के लोग हमसे इतने अधिक उन्नत हैं, इसलिये हमारी चौथी मूल जाति के मध्य में दरवाजा बंद होने के पहलं जो काम की भीड़ पड़ी थी, उसमें सहायता करने के लिये यह उचित समझा गया कि शुक्र ग्रह से कुछ मुक्त पुरुष (महात्मा) पृथ्वी पर भेजे जायें।

ये महात्मा ज्योति के स्वामी ब्रह्मवर्चस (सनकादि कुमार) और अग्नि के पुत्र कहलाते हैं और इनका हमारी उन्नति पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा है। हमारी तर्क शक्ति, जिसका हमें इतना अभिमान है, वह केवल इन्हीं के सत्संग के प्रताप से है, क्योंकि सामान्य क्रम से तो आगे आने वाला अर्थात् पांचवां फेरा तर्कशक्ति की उन्नति का होना चाहिये था, और हमारे इस चौथे फेरे में तो हमें मुख्य करके अपनी काम क्रोधादि वासनाओं के सुधार में लगे हुए होना चाहिये था। इसलिये जो क्रम कि हमारे लिये पहले बनाया गया था, उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तविकता में हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं और यह केवल इन बड़े महात्माओं की सहायता का प्रताप है। इन महात्माओं में से बहुत से केवल हमारे उस भीड़ के समय तक ही हमारे साथ रहें, परंतु उनमें से थोड़े से बृहत् श्वेत महामण्डल में बड़े बड़े कामों पर अब भी हैं और जब तक कि हममें से मनुष्य उन्नति करके इन महात्माओं का काम सम्हालने के योग्य न हो जायें, तब तक ये महात्मा यहां बने रहेंगे।

अब भी जो हमारी उन्नति होनेवाली है, वह जीव और शरीर दोनों की है, क्योंकि आगे के चक्रों में जीवात्मा भी बराबर बल बुद्धि और प्रेम में बढ़ेंगे और स्थूलशरीर भी इतने अधिक सुंदर और उत्तम होंगे कि पहले कभी नहीं हुए थे। आजकल इस संसार में मनुष्यों की उन्नति के दर्जो में बहुत बड़े बड़े अंतर हैं और यह चौड़े हैं कि दल के दल जंगली लोगों के हैं जो कि पृथ्वी की बड़ी सभ्य जाति के मनुष्यों से बहुत पीछे हैं, और सच तो यह है कि वे इतने पीछे हैं कि अब बढ़कर इनके बराबर कभी नहीं आ सकेंगे। हमारे उन्नति के क्रम में कुछ आगे चलकर एक ऐसा समय आ जायेगा कि जहां से आगे वे नीची कक्षा के जीवात्मा दूसरों के साथ नहीं चल सकेंगे और तब इनको फेंटना पड़ेगा।

विद्यालय में गुरु जैसे अपनी कक्षा में से लड़कों को छांट लेता है, ठीक वैसी ही यह क्रिया है। गुरु को विद्यालय में वर्ष भर अपने लड़कों को किसी परीक्षा के लिये तैयार करना पड़ता है और प्रायः छः माह में उसे भलीभांति ज्ञात हो जाता है कि उनमें से कौन-कौन लड़के परीक्षा में ठीक निकलेंगे। अगर उसके कक्षा में कोई ऐसे लड़के हों जो अन्य से इतने पीछे हों कि उनके ठीक निकलने की आशा न हो तो, उसका उनसे छमाही पर यह कहना अनुचित न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगा कि 'तुम्हारा अपने कक्षावालों के साथ रहना तुम्हारे लिये व्यर्थ है, क्योंकि अब जो अधिक कठिन बातें पढ़ाई जायेगी, वे तुमको कुछ भी समझ में नहीं आयेगी और यह हो नहीं सकता है कि अब आगे इस थोड़े समय में तुम इतना सीख सको, कि परीक्षा में ठीक निकल जाओ। इसलिये अब तुम्हें व्यर्थ परिश्रम करना होगा। और कक्षा में तुम्हारे कारण दूसरों को अड़चन होगी। इसलिये तुम्हारे लिये यह बहुत अच्छा होगा कि अनहोनी बात करने का साहस छोड़ो और नीचे के दर्जे का काम जिसमें तुम अधूरे थे, अब फिर करने लग जाओ और अगले वर्ष के कक्षा के साथ इस परीक्षा में शामिल हो जाना, क्योंकि जो बात अभी तुम्हारे लिये असम्भव है वह तब सरल हो जायेगी।'

हमारे आगे की उन्नति के क्रम में एक समय आता है, जब उन जीवात्माओं से जो बहुत ही पिछड़ गये हों, ठीक ऐसी ही बात कही जाती है। वे इस वर्ष के कक्षा से अलग हो जाते हैं और दूसरे वर्ष के कक्षा के साथ होकर फिर आगे आ जाते हैं। यही 'कल्प भर का नर्क' है, जिसका कुछ वर्णन पहले हो चुका है। हिसाब लगाने से यह बात निकली है कि सब मिलाकर सौ सौ मनुष्यों से चालीस-चालीस इस तरह से कक्षा से छँट जायेंगे और सौ-सौ में से साठ-साठ रहे, वे सब ही जल्दी ही उन्नति करके उस उत्तम पद पर पहुंच जायेंगे जो उनके लिये धामा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. ब्रह्मविद्या का सुफल

'ब्रह्मविद्या सभा के सभासद इन सिद्धान्तों को पढ़ते हैं और ब्रह्मज्ञानी उन पर चलने का उद्योग करते हैं' तो सच्चा ब्रह्मज्ञानी इस ज्ञान से किस किस्म का मनुष्य बन जाता है? और उसके दिन रात के जीवन में इस अभ्यास का क्या फल होता है?

यह बात जानकर कि सबके ऊपर एक ऐसी शक्ति है जो उन्नति के क्रम को चला रही है और यह कि वह सर्वज्ञ और सबका हितकारी है, ब्रह्मज्ञानी मनुष्य को यह दिखायी देता है कि इस सृष्टिक्रम में जो कुछ है वह इसकी उन्नति के बढ़ाने के लिये ही है। उसे यह भी अनुभव हो जाता है कि धर्म पुस्तकों में जो लिखा है कि सब बातें भलाई के लिये ही हो रही है, यह केवल कवियों (शायरों) की चपल कल्पना या श्रद्धालु भक्तों की आशा ही नहीं है, किन्तु एक सच्ची प्रत्यक्ष प्रमाण की बात है। यह निःसन्देह निश्चित है कि हर एक मनुष्य की वर्तमान व्यवस्था चाहे कैसी ही हो अन्त में उसे ऐसा उत्तम पद मिलेगा कि जिसका वर्णन भी नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी निश्चित है कि यहां और इस क्षण में भी वह उस पद की ओर बढ़ रहा है और जो कुछ भला- बुरा उस पर बीतती है, असल में अगर देखा जाये तो वह सब, उसको सहायता देने के लिये है न कि उसको रोकने को। यह बात निःसन्देह चिंता की है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार में बुराई, शोक और दुःख बहुत है, परन्तु ऊंची दृष्टि से देखने से ब्रह्मज्ञानी को यह दिखायी पड़ जाता है कि चाहे कैसी ही भयानक क्यों न हों, ये बातें हैं केवल थोड़े दिनों की और ऊपरी और ये सब उन्नति के लिये ही काम में लाई जा रही है।

जब अपने अज्ञान के दिनों में जीव इन बातों को अपनी अज्ञान की दृष्टि से देखता था, तब उसको ऐसा दिखायी पड़ना असम्भव था। जब तक किसी ऐसी बात पर, जो बुराई सी जान पड़ती थी, आंख जमाकर इस संसार की बाहरी बातों को वह नीचे से देखता था तब तक वह उसके असली भेद नहीं समझ सकता था। परन्तु अब वह अपने विचार और चेतन ऊंचे पर ले जाकर ऊपर से अपनी भीतरी या आत्मा की आँख से संसार को देखता है और उसका भेद पूरा समझ लेता है, इसलिये उसे यह दिखायी पड़ने लग गया है कि जो कुछ हो रहा है सब असल में भलाई ही है और यह नहीं कि यह भलाई आगे किसी बहुत बड़े समय के बीतने पर होगी, किन्तु यह अब भी इस क्षण में निरंतर कलह और दिखावे की बुराई के बीच में भी उन्नति की प्रबल धारा बराबर बह रही है। इसलिये यह सब अच्छा ही हो रहा है, क्योंकि यह सब उत्तम प्रबन्ध के साथ आगे अंतिम लक्ष्य की ओर बढ़ता जा रहा है।

ब्रह्मज्ञानी अपने चेतन को संसार के झगड़ों टंटों से ऊंचा ले जाता है और जो बात उसे पहले बुराई सी बताती थी, उसके भेद को पहचानने लगता है और यह भी देख लेता है कि उन्नति की बड़ी धार से उल्टी यह पीछे को दबाती हुई क्यों जान पड़ती है। उसे यह भी दिखायी पड़ने लगता है कि उन्नति के दैवी नियम की बाढ़ के सामने यह ऊपरी बुराई ऐसी ही तुच्छ है जैसी कि नियागरा नदी के प्रचंड प्रवाह के सामने उसके पानी के ऊपर का झाग। यों हर एक के दुःख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उसे गाढ़ा दुःख होता है परंतु यह मन में जानता है कि इस दुःख का परिणाम क्या होगा और इसलिये वह निराश कभी नहीं होता। वह संसार के और ऐसे ही अपने शोक और दुःख पर इसी प्रकार विचार करता है और इसलिये उसके ब्रह्मज्ञान का एक बड़ा फल यह होता है कि उसे पूरी शान्ति रहती है। इतना ही नहीं, किन्तु इससे अधिक यह कि उसे सदा प्रसन्नता और सुख रहता है।

ब्रह्मज्ञानी को चिन्ता तो होती ही नहीं, क्योंकि वह यह जान लेता है कि सब अच्छा ही होगा और इसलिये असल में चिन्ता करने की कोई बात ही नहीं रहती। उसकी यह ऊंची विद्या उसे पक्का साहसी और हिम्मतवाला बना देती है, क्योंकि वह उसे एक ओर तो यह दिखा देती है कि जो कुछ बुराई किसी मनुष्य या किसी काम में हो वह केवल थोड़े दिनों की है, क्योंकि बुराई उन्नति के अटल धार के विरुद्ध होती है और दूसरी ओर उसे यह दिखा देती है कि जो कुछ भलाई किसी मनुष्य या किसी काम में है, वह स्थायी और लाभदायक है। क्योंकि उस भलाई की पीठ पर सर्वशक्तिमान् प्रवाह की सहायता है और इसलिये वह सदा स्थिर रहेगी और सब पर प्रबल रहेगी।

अन्त में भलाई की जय होने का ऐसा पूरा विश्वास होने से यह एक क्षण के लिये भी नहीं मान लेना चाहिये कि संसार में जो बुराइयां उसके चारों ओर होती हैं उनसे ब्रह्मज्ञानी लापरवाह या रूखा बना रहता है। वह जानता है कि उसका यह कर्तव्य है कि अपने सामर्थ्य भर वह इन बुराइयों को रोके, क्योंकि ऐसा करना सृष्टिक्रम की बड़ी शक्ति की सहायता करना और उसकी अन्तिम जय के समय को नजदीक लाना है। भलाई के काम करने में कोई भी उससे अधिक पुरुषार्थी नहीं हो सकता है, यद्यपि दूसरों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायता करने में जो लोगों के मन में प्रायः निर्बलता और निराशा की भावना से बाधा होती है, वह उसमें सर्वथा नहीं होती।

एक और बहुत बड़ा फल ब्रह्मविद्या के अभ्यास का यह होता है कि भय नहीं रहता है। बहुत से लोगों को सदा किसी न किसी बात का सोच या फिक्र लगा रहता है, उन्हें यह डर लगा रहता है कि उनके कहीं यह न हो जाये, वह न हो जाये या यह कि यह मेल या वह मेल टूट न जाये और इसलिये वे सदा बेचैन बने रहते हैं। सबसे अधिक तो बहुतों को मौत का भय होता है। ब्रह्मज्ञानी के मन से यह डर निर्मूल हो जाता है। उसे पुनर्जन्म के सिद्धान्त का अनुभव हो जाता है। वह जान जाता है कि वह पहले कई बार स्थूल शरीरों को छोड़ चुका है और इसलिये उसे यह जान पड़ता है कि मौत नींद से कुछ भी अधिक नहीं है, अर्थात् यह कि जैसे नींद हमारे काम के दिनों के बीच में आया करती है और हमको आराम और ताजगी दिया करती है, वैसे ही हमारे पृथ्वी पर शरीर के दिनों के बीच अर्थात् हमारे जन्मों के बीच बीच में वासना लोक और स्वर्ग की अवस्था की एक बड़ी रात हमको आराम और ताजगी देने को और हमारी उन्नति में सहारा लगाने को आया करती है।

ब्रह्मज्ञानी को तो मौत केवल थोड़े दिन के लिये इस हाड़ मांस के कपड़े का उतार डालना है, वह यह जानता है कि उसका यह धर्म है कि जहां तक हो सके इस शरीर रूपी वस्त्र को बनाये रखे और उसमें होकर जितना हो सके उतना अनुभव करे, परंतु जब उसके उतार डालने का समय आ जाये तब वह धन्यवाद देकर उसे त्याग देता है, क्योंकि वह जानता है कि इससे आगे का स्तर इससे अधिक सुख का होगा। यों उसे मौत का कोई डर नहीं होगा, यद्यपि उसे निश्चय है कि उसे नियत समय तक जीना होगा, क्योंकि उसका यहां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आना केवल उन्नति के लिये है, और उन्नति ही उसके लिये असल में मुख्य बात है। उसके मन में जीने का प्रयोजन ही निराला है, उसका मनोरथ यह नहीं है कि इतना रुपया कमा लिया जाये और न यह है कि ऐसे ऐसे अधिकार मिल जाये, उसके लिये सबसे बड़ी बात यह है कि दैवी इच्छा को यह पूरा करे। वह जानता है कि इसी के लिये वह यहां पर आया है और इस प्रयोजन के आगे और सब बातें टाल देनी होगी।

मत मतान्तरों में जो डरावनी बातें चिंता और कष्टों की हैं, उनकी इसे कुछ भी शंका नहीं रहती। ऐसी बातों से तो उसका छुटकारा हो गया है, क्योंकि उसे अच्छी तरह से मालूम हो गया है कि परमेश्वर की इच्छा है कि हम परम पद की ओर उन्नति करते जायें और यह अमिट है और जो कुछ हमारे आगे आता है, जो कुछ हम पर बीतता है, वह सब इस उन्नति के मार्ग पर हमें बढ़ाने के लिये है और यह कि हमारी उन्नति में अगर कोई देरी हो सकती है तो हमारे ही हाथों से। अब उसे अपने आपके लिये कोई चिंता या डर नहीं रहा है। वह केवल अपने शरीर का निर्वाह करता है और जो कुछ काम उसके आगे आता है उसे अच्छी तरह करता है, क्योंकि उसे यह विश्वास रहता है कि अगर वह इतना करता जाये तो उसका बिना किसी चिंता के अपने आप ही भला होता रहेगा। उसे इतने में ही संतोष होता है कि वह अपना काम और अपने साथियों की मदद चुपचाप करता जाये, क्योंकि उसे मालूम है कि जहां तक कि वह अपना मुंह ठीक दिशा की ओर किये रहेगा, और जहां तक कि करने का काम वह सामर्थ्यभर करता रहेगा, वहां तक बड़ी दैवी-शक्ति पीछे से धीरे-धीरे उसे आगे को बराबर दबाती रहेगी और जो कुछ कि हो सकता है बराबर उसके लिये करती रहेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे यह मालूम है कि हम सब एक बड़े सृष्टिक्रम के अंग हैं और सचमुच एक ही पिता के लड़केवाले हैं और इसलिये उसे यह दिखायी पड़ता है कि मनुष्यों का एक दूसरे का भाई होना कोरी कवियों की कल्पना नहीं है, किन्तु एक निश्चित और सच्ची बात है, अथवा यह केवल किस्से कहानी की तरह एक अत्यंत ऊंचे लक्ष का स्वप्न नहीं है। यह एक सच्ची व्यवस्था है जो अभी और यहां ही हो रहा है। इस बात के निश्चित होने से सब भाई-भाई हैं, उसके विचार में बहुत उदारता आ जाती है और वह हर एक बात को परमार्थ की दृष्टि से देखने लग जाता है। उसे यह अनुभव हो जाता है कि सबकी भलाई में ही हरएक की सच्ची भलाई है और दूसरों को हानि या दुःख पहुंचाकर किसी का सच्चा लाभ कभी नहीं हो सकता है। यह बात वह केवल श्रद्धा से ही नहीं मानता है किन्तु अभ्यास से सिद्ध होकर यह उसको प्रत्यक्ष प्रमाण हो गया है। उसे यह दिखायी पड़ता है कि मनुष्य मात्र में सचमुच एकता है। इसलिये किसी एक के बिगाड़ में किसी दूसरे की भलाई कभी नहीं हो सकती, क्योंकि इसका असर केवल बिगाड़ करने वाले पर ही नहीं पड़ता है, किन्तु उसके आस पास वालों पर भी।

वह यह जानता है कि उसकी सच्ची भलाई उसी लाभ से होती है, जिसमें वह सबको शामिल कर ले। वह देखता है कि जो कुछ अध्यात्मिक उन्नति या वृद्धि उसने की है, उसका लाभ केवल उसके ही लिये नहीं है। वह औरों के लिये भी। अगर वह ज्ञान प्रास कर लेता है या आत्मसंयम से अपना मन वश में कर लेता है, तो इससे निःसन्देह उसकी बड़ी कमाई होती है, परन्तु इसमें दूसरों से वह कुछ ले नहीं लेता है, किन्तु उनको इससे सहायता सौर बल से पहुंचता है। उसे यह तो मालूम ही है कि मनुष्य मात्र में अध्यात्मिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकता है, इसलिये वह जानता है कि इस नीचे के लोक में भी किसी के लिये कोई बात सच्ची लाभ की जब ही हो सकती है जब कि वह सबके लिये की जाये और उसमें सबका हित हो। वह यह भी जानता है कि किसी एक मनुष्य की वृद्धि वह ही है जिससे सब दूसरों के कंधे का बोझ हल्का हो और यह अगर कोई मनुष्य अध्यात्मिक (परमार्थ) की उन्नति करे तो उससे मनुष्य मात्र की थोड़ी सी परन्तु प्रत्यक्ष उन्नति हो ही जाती है और यह कि जो कोई अपने अध्यात्मिक तप में सोच और कष्ट वीरता (बहादुरी) से सहता है वह अपने भाइयों की सोच और कष्ट के भारी बोझे को भी कुछ न कुछ हल्का कर रहा है।

इस भाईचारे के भाव को वह केवल ऐसे नहीं मानता है, जैसे निराश होकर लोग आशा को अमर धन समझने लगते हैं, किन्तु वह उसे एक सच्ची बात समझता है, जिसका प्रमाण दूसरी सत्य बातों से, विज्ञान की रीति से (निश्चय के साथ) सिद्ध होता है, और वह इसे निरन्तर सत्य भी जानता है, इसलिये उसका अपने आस-पास के लोगों के साथ बर्ताव करने का भाव सम्पूर्ण बदल जाता है। इससे उसका स्वभाव निरंतर उपकारी और गहरी सहानुभूति का बन जाता है, क्योंकि वह देखता है कि जो कुछ उसके आस-पास के लोगों के परमार्थ की भलाई के विरुद्ध हो वह उसके लिये न तो उचित है और न किसी तरह लाभ देने वाला है।

इससे यह बात सहज निकलती है कि उसमें सहनशीलता और क्षमा बहुत ही आ जाती है। वह सदा सहनशील ही रहता है, क्योंकि उसके सिद्धान्तों से उसे यह दिखायी पड़ता है कि जहां तक कोई मनुष्य भला और सच्चा हो, वहां तक यह बड़ी चिंता की बात नहीं है कि वह किस मत का माननेवाला है। वह क्षमा भी सदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखता है, क्योंकि उसका ज्ञान अधिक विस्तार का होता है, इसलिये बहुत सी बातों को जिन्हें साधारण लोग नहीं समझ सकते हैं यह क्षमा कर देता है। पुण्य और पाप का लक्ष्य कम पढ़े लोगों से ब्रह्मज्ञानी का सदा ऊंचा होता है, परन्तु पापी की ओर इसका भाव बहुत नर्मी का होता है, मनुष्य की प्रकृति का भेद यह अधिक समझा हुआ है। इसे मालूम है कि पाप करते समय पापी को पाप कैसा लगा था और इसलिये जितनी क्षमा की अज्ञानी मनुष्य कर सकता है उससे यह अधिक करता है।

वह सहनशीलता, क्षमा और सहानुभूति से भी आगे जाता है, उसे मनुष्य मात्र से सहज प्रेम होता है और इसलिये वह उपकारी भाव बनाये रहता है। वह यह समझता है कि दूसरों से मिलने के जो संसर्ग उसे होते हैं। वे सबके सब उसके लिये अलग-अलग अवसर होते हैं और जो पढ़ते-पढ़ते उसे अधिक ज्ञान प्राप्त हो गया है, उससे उसे ऐसी योग्यता हो गई है कि चाहे कोई विषय उसके आगे आये, उसमें वह सलाह या मदद दे सकता है। यह बात नहीं है कि वह दूसरों के बीच में अपने आप सदा सलाह देने का प्रयास करता फिरेगा। उल्टा उसे यह अनुभव रहता है कि यह भूल बिना पढ़े लोगों ही प्रायः हो जाया करती है। वह यह भी जानता है कि वाद-विवाद करना मन की शक्ति को व्यर्थ गंवाना है, इसलिये वह विवाद करने से इन्कार कर देता है। अगर कोई उससे किसी बात की व्यवस्था या कोई सलाह पूछता है तो वह इसके लिये पूरा तैयार रहता है, परंतु उसे यह इच्छा नहीं होती है कि वह किसी को उसके मत या विचार से निकाल कर अपने में लाये।

संसार के हर व्यवहार में यह सेवा का भाव मनुष्यों के साथ ही नहीं, किंतु उसके आस पास के पशुओं की बड़ी सृष्टि के साथ भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम में आता है। पशुओं में से किसी का मनुष्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है और यह ही उसकी उनके लिये कुछ न कुछ करने का अवसर बन जाता है। ब्रह्मज्ञानी यह बात जानता है कि यह भी उसके भाई हैं, चाहे छोटे ही क्यों न हों और इसलिये उस पर उनका भी भाईचारे का भार होता है और वह यह है कि वह ऐसे विचार और काम करे जिससे कि उसके सम्बन्ध से उनका सदा भला हो और हानि कभी नहीं होने पाये।

विशेषकर और सबसे ऊपर उसकी ब्रह्मविद्या उसके लिये एक ऐसा मार्ग है, जिसका आधार साधारण बुद्धि पर है। यह उसको जहां तक वह अभी समझ सकता है यह बताता है कि परमेश्वर और मनुष्य क्या है और उनके आपस में क्या सम्बन्ध है ? तब ब्रह्मज्ञानी इन बातों पर ध्यान देने लगता है और इन पर साधारण बुद्धि के साथ चलने लगता है। वह अपने रहन–सहन को सृष्टि के उन नियमों के अनुकूल कर लेता है जो ब्रह्मविद्या से उसने सीखे हैं और इससे उसे नई बातें (लक्ष्य) दिखायी पड़ने लगती हैं और एक कसौटी मिल जाती है कि जिससे वह हर एक बात की जांच कर सकता है अर्थात् जिससे वह सबसे पहले तो अपने ही विचारों, वासनाओं और कर्मों की और फिर उन बातों की जांच कर सकता है जो कि संसार में बाहर से उसके आगे आती हैं।

वह जांच इस तरह करता है कि क्या यह बात भला है या बुरा, क्या इससे सृष्टि की उन्नति में सहायता मिलती है या रोक होती है। अगर कोई विचार या वासना उसके भीतर उठती है तो इस विधि से जांच कर, वह देख लेता है कि उसको बढ़ाना चाहिये या नहीं। अगर वह विचार या वासना अधिक से अधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई के लिये हो तब तो वह ठीक है, परन्तु अगर उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी की उन्नति में रोक या हानि होती हो तो वह बुरा है और उससे बचना चाहिये। अगर उसे किसी दूसरे की किसी बात की जांच करनी हो तो भी ठीक यही विधि काम में लाई जाती है। अगर इस विधि की जांच से कोई बात भलाई की पाई जाये तो वह अंत:करण से उसको पुष्ट करता है, नहीं तो उससे वह कुछ काम नहीं रखता।

स्वार्थ का विचार उसको किसी मामले में नहीं आता। वह तो केवल सम्पूर्ण सृष्टि की उन्नति का विचार करता है। इससे उसको एक निश्चित आधार और साफ साफ जांच की विधि हाथ लग जाती है और फिर उसे सन्देह या दुविधा की बाधा नहीं रहती है। परमेश्वर का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की उन्नति हो, इसलिये जिस किसी बात से इसकी वृद्धि हो वह ही अच्छी और जिस किसी से इसमें रोक या देरी हो वह ही बुराई है, चाहे कितना ही प्राचीन सदाचार और लोकमत का सहारा उसकी ओर हो।

वह जानता है कि असली मनुष्य जीवात्मा है, न कि शरीर। इसलिये उसे यह दिखायी पड़ता है कि जीवात्मा का जीवन ही बड़ी बात है और यह कि शरीर की सब बातों को नि:संदेह जीवात्मा के ऊंचे विषयों के आधीन कर देना चाहिये। उसे यह अनुभव हो जाता है कि यह स्थूल जान उसे उन्नति के लिये ही दी गई है और इसलिये यह उन्नति ही एक सर्वोपरि बड़ी बात है। जीने का असली अभिप्राय यह है कि जीवात्मा की शक्तियां उभारी जायें और स्वभाव की उन्नति की जाये। वह जानता है कि विकास स्थूल शरीर का ही नहीं होना है, किन्तु मानसिक स्वभाव, मन और अध्यात्मिक शक्तियों का भी। वह देखता है कि उन्नति में उससे यह आशा की जाती है कि वह सम्पूर्ण सम्पन्नता ही प्राप्त करेगा और यह कि यह सब उसी के हाथ में है और यह है कि उस सम्पन्नता के प्राप्त करने को अनन्त समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा हुआ है, परन्तु जितनी जल्दी प्राप्त हो जायेगी उतना ही अधिक उसका आनन्द और उपकार होगा।

वह यह जानता है कि उसका जीवन केवल विद्यालय के एक दिन की तरह है और यह स्थूल शरीर, थोड़े दिन का वस्त्र है जो इसलिये पहना गया है कि उसमें होकर विद्या सीखी जाये। उसे यह तत्काल मालूम हो जाता है कि यह विद्या सीखने का अभिप्राय ही एक सचमुच बड़ी बात है और इस अभिप्राय से किसी कारण से टल जाता है, वह समझना मूर्खता है। उसकी दृष्टि में जीने को निरा स्थूल वस्तुओं में और धन या नामवरी कमाने में लगाना केवल बच्चों सा खेल लगता है, अर्थात् उसे यह लगता है कि इन्द्रियों के पलभर के सुख के लिये उन सब असली बढिया बातों का छोड़ देना एक बड़ी मूर्खता का काम है। वह तो 'अपने मन को ऊपर की वस्तुओं में लगाता है न कि पृथ्वी की वस्तुओं में' और उसका कारण यह ही नहीं है कि यह उसको उचित दिखायी पड़ता है किंतु यह भी है कि ये पृथ्वी की वस्तुएं उसे चौड़े ही तुच्छ लगती हैं। वह सदा ऊंचे लक्ष्य की ओर देखने का उपाय करता है क्योंकि वह यह जानता है कि नीचे का लक्ष्य किसी तरह प्रतीत के योग्य नहीं है और नीचे की कामनायें और वासनायें गहरे कुहर की तरह उसे घेर लेती हैं और उसकी दृष्टि धुमली कर देती है।

जब कभी उसके मन में दुविधा खड़ी होती है तो वह यह याद कर लेता है कि मैं ऊंचा हूं और जो यह नीचा है वह असली आत्मा नहीं है किन्तु मेरे शरीरों में से एक शरीर का ऐसा अंग है जो वश में नहीं हो पाया है। वह यह जानता है कि अपने लक्ष्य के मार्ग में चाहे वह हजार बार गिर पड़े तो भी उसका उत्साह लक्ष्य पर पहुंचने का हजार बार गिरने पर भी उतना ही बना रहेगा जितना कि आरम्भ में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था, इसलिये निराश होना केवल निरर्थक ही नहीं, किन्तु उसमें मूर्खता और बुराई भी होती है। वह उन्नति के रास्ते पर चलना तुरन्त आरम्भ कर देता है और यह इसलिये नहीं कि वह जानता है कि देर में आरम्भ करने से अभी आरम्भ कर देना बहुत सरल होगा किंतु मुख्यकर इसलिये कि अगर वह अभी उपाय करके कुछ उन्नति कर लेगा और यों कुछ ऊंचे दर्जे पर चढ़ जायेगा तो उसे उन लोगों को सहायता देने की सामर्थ्य हो जायेगी, जो उस दर्जे पर अभी नहीं पहुंच पाये, जिस पर यह पहुंच गया है। इस प्रकार उन्नति की बड़ी दैवी क्रिया में वह भी काम करने लग जाता है, चाहे वह काम कितना ही तुच्छ हो।

वह जानता है कि वह धीरे-धीरे बढ़कर ही अपनी वर्तमान अवस्था पर पहुंचा है और इसलिये वह यह नहीं आशा करता है कि उसे क्षणभर में ही पूर्णता प्राप्त हो जायेगी। वह देखता है कि कर्म और कर्मफल का बड़ा नियम कैसा अटल है, और यह कि जब वह एक बार इस नियम की विधि को समझ लेगा तो वह अपने मन और आचरण की उन्नति में उस नियम को बुद्धिपूर्वक काम में ला सकेगा, ठीक जैसे कि स्थूल लोक में हम अपने काम में प्रकृति के उन नियमों को लाते हैं जिनकी विधि हम समझ गये हैं।

यह समझकर कि मौत क्या वस्तु है, उसे यह मालूम हो जाता है कि उसमें डरने या चिंता करने की कोई बात नहीं है, चाहे मौत अपने आपको आये, चाहे उसके प्रीतिवालों को। मौत उन सबको पहले कई बार आ चुकी है, इसलिये उसमें कोई विलक्षण बात नहीं है। वह तो मौत को केवल यों समझता है कि यह ऐसी जीने की अवस्था से जो आधी से अधिक स्थूल हो बहुत बढ़िया अवस्था में चढ़कर जाना है, इसलिये अपने लिये वह मौत का सच्चे दिल से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वागत करता है और जब मौत उसके प्रीतिवालों को आती है तब भी वह जानता है कि इसमें उनका लाभ है, यद्यपि उसको स्थूल लोक में थोड़े दिन के लिये उनसे जुदा होने का खेद हुए बिना नहीं रहता। परंतु वह यह जानता है कि जिनको हम मरे हुए समझते हैं वे अब भी उसके पास ही हैं और पहले की तरह उनके साथ होने के लिये उसे केवल थोड़ी देर के लिये उसे अपने स्थूल शरीर को नींद में छोड़ना पड़ता है।

उसे यह साफ दिखायी पड़ता है कि संसार एक ही है और यह कि सारा संसार चाहे वह दृश्य हो चाहे अदृश्य, एक ही दैवी नियम के आधीन है। इसलिये संसार के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाकर उसे न तो घबराहट होती है और न अनोखापन लगता है और न उसे इस बात की शंका होती है कि परदे के दूसरी ओर उसे क्या मिलेगा। वह यह जानता है कि उस ऊंचे जीवन अवस्था में नई नई विद्या सीखने के लिये और उपकार करने के लिये उत्तम उत्तम अवसर मिलेंगे और इस स्थूल शरीर के छोड़ने पर जीवन अवस्था ऐसी निर्मल और तेजवाली होती है कि उसके आगे पृथ्वी के सारे भोग कुछ भी नहीं है और यों उसके निर्मल ज्ञान और शान्ति और श्रद्धा में होकर अनंत जीवन की शक्ति का प्रकाश उसके आस पास के सब लोगों पर पड़ता है।

आगे उसका क्या होनहार है ? इसकी उसको कोई शंका नहीं उठ सकती है क्योंकि ठीक जैसे कि पीछे को जंगली मनुष्यों की ओर देखकर वह जान जाता है कि मैं पहले क्या था ऐसे ही सबसे बड़े और बुद्धिमान मनुष्यों की ओर देखकर वह जान लेता है कि मैं आगे क्या बन जाऊंगा। वह देखता है कि उन्नति की एक अखंडित सांकल है या एक सरणी उसके सामने खड़ी है जो परम पद तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चली गई है और जिसके हर एक डंडे पर मनुष्य बैठे हैं, इससे वह जानता है कि वह भी इन डंडों पर चढ़ सकेगा। कर्म और कर्म फल के बड़े नियम की स्थिरता पर ही भरोसा रखकर उसे इस सैनी पर चढ़ने का साहस होता है क्योंकि नियम सदा एक सा चलता है और इस पर भरोसा हो सकता है और वह इसे काम में ठीक वैसे ही ला सकता है जैसे कि स्थूल लोक के प्रकृति के नियमों को। इस नियम के जान लेने से उसे असली बात के अनुभव करने की सामर्थ्य हो जाती है और उसे यह मालूम पड़ जाता है कि अगर कोई बात उस पर बीतती है तो इसका कारण यह ही होता है कि वह उसका अधिकारी है और वह उसके इस जन्म या और जन्मों के पहले कर्म, वचन या विचारों का फल है। वह समझता है कि क्लेश का भुगत लेना मानो ऋण का चुकाना है, इसलिये जब उसे संसार में दुःख होता है तब वह उसे स्वीकार करता है और उससे शिक्षा भी ले लेता है, क्योंकि वह यह समझ लेता है कि ये दुःख क्यों आये हैं और उसे यह प्रसन्नता होती है कि इस दुःख से उसे अपने भार के थोड़े बहुत उतारने का यह अवसर मिला है।

इसके सिवाय वह एक और तरह से भी दुःखों का आना एक अच्छा अवसर समझता है, क्योंकि वह जानता है कि अगर वह इनको चतुराई से झेले तो इनसे और भांत का भी लाभ होता है। वह आनेवाले भार के सहने में पहले से ही समय नहीं खोता है और जब दुःख आ पड़ता है तो वह वृथा विलाप करके उसे और भारी नहीं बना लेता है किंतु उसमें से जितना कि अटल हो उतने को धीरज और साहस के साथ सहने को तत्पर हो जाता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह कड़े प्रारब्ध वादी की तरह हार मान कर उसके बस में नहीं हो जाता है, क्योंकि वह यह मान लेता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विपदा इसलिये आया करती है कि मनुष्य में उसके काटने और सहने की सामर्थ्य पैदा हो, और यों अपने पुराने पापों में से वह ऐसी सामग्री निकाल लेता है कि जो आगे की वृद्धि के लिये बीजरूप साधन बन जाती है। क्योंकि ऋण चुकाने से ही उसमें साहस और दृढ़ता के सद्‌गुण पैदा होते हैं और ये उसके साथ रहकर उसके सदा सर्वदा लाभ पहुंचाते रहते हैं।

उसमें और संसार के लोगों में यह भेद होता है कि वह सदा प्रसन्न चित्त रहता है, संकट में धीरज और साहस बनाये रखता है, और दया और उपकार करने में तत्पर रहता है। परन्तु इसके साथ ही वह संसार को खिलौना नहीं समझता है और यह जानता है कि इसमें हर एक को बहुत कुछ काम करना है और खोने को समय नहीं है। उसे निश्चय मालूम है कि वह अपनी ही आगे की प्रारब्ध नहीं बनाता है किन्तु दूसरे लोग जो उसके आस पास हैं उन पर भी उसका भारी असर पड़ता है और इसलिये उसे पूरा विचार इस बात का रहता है कि अधिकारों के साथ ही उस पर बड़े-बड़े भार भी हैं।

वह जानता है कि मन के विचार भी कोई वस्तु हैं और इनसे सहज ही बहुत बुराई भलाई हो सकती है। वह जानता है कि कोई मनुष्य अकेला नहीं रह सकता है क्योंकि उसके हर एक विचार का असर दूसरों पर भी पड़ता रहता है। वह यह भी जानता है कि मन से और मन शरीर से जो जो तरंगें वह बाहर निकालता है वे दूसरों के मन और मन शरीर में प्रकट हो जाती है और जिस जिससे उसका काम पड़े उसके मन की भलाई या बुराई का यह कारण हो जाता है।

इस तरह पर सदाचार के उसे ऐसे ऊंचे नियम मानने पड़ते हैं जो संसारिक सदाचार से कहीं ऊंचे हैं, क्योंकि वह जानता है कि उसे केवल अपने कर्म और वचन ही नहीं वश में रखना है। किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने मन के विचार भी। इसलिये कि इनका असर इनके बाहरी रूप अर्थात् कर्मों और वचनों की अपेक्षा बहुत दूर तक पहुंचनेवाला होता है। वह जानता है कि जब कोई मनुष्य दूसरों का कुछ भी विचार नहीं करता है, तब भी उसका उन पर भला या बुरा असर पड़ता है। दूसरों पर उसके विचार का यों बेजाने असर तो होता ही है, परन्तु इसके सिवाय वह जान बूझकर भी अपने विचारों को उनकी भलाई के लिये काम में लाता है। वह अपने बहुत से दुःखी मित्रों को सन्तोष और सुख की मानसिक तरंगे भेजता रहता है और यों उसके लिये एक नया मार्ग उपकार करने का खुल जाता है।

वह अधर्म के विचारों की (अपेक्षा) उत्तम विचारों की ओर और नीच की अपेक्षा उदार की ओर सदा झुका रहता है। वह हर एक बात को उत्साह की दृष्टि से देखता है न कि कायरता से और परमार्थी बना रहता है न कि स्वार्थी। क्योंकि वह जानता है कि यह ही असलियत में सच है। वह हर एक बात में बराबर भलाई की ओर ही दृष्टि रखता है, जिससे कि उस बात में भलाई बढ़े और वह सदा उपकार करने का उपाय करता रहता है, न कि बाधा डालने का। और यों वह मनुष्यों का और भी अधिक उपकारी बन जाता है और इस तरह से वह चाहे कितना ही तुच्छ क्यों न हो इस विशाल दैवी उन्नति क्रम में सहायक और काम करने वाला बन जाता है। यह जानकर कि मैं इस क्रम का एक अंग हूं वह अपने आपको सर्वथा भूल जाता है और दूसरों के ही लिये जीता है। वह अपने भीतर जो ईश्वर है उसका भी अनुभव कर लेता है और उस ईश्वर का सदा सच्चा भाव दर्शाना सीख जाता है और यों ईश्वर की इच्छा पूरी करने में यह ब्रह्मज्ञानी केवल अपना ही कल्याण नहीं करता है किन्तु सबके लिये कल्याण का हेतु बन जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राण (जीव) विकास की सात शैलियां और शाखाएं

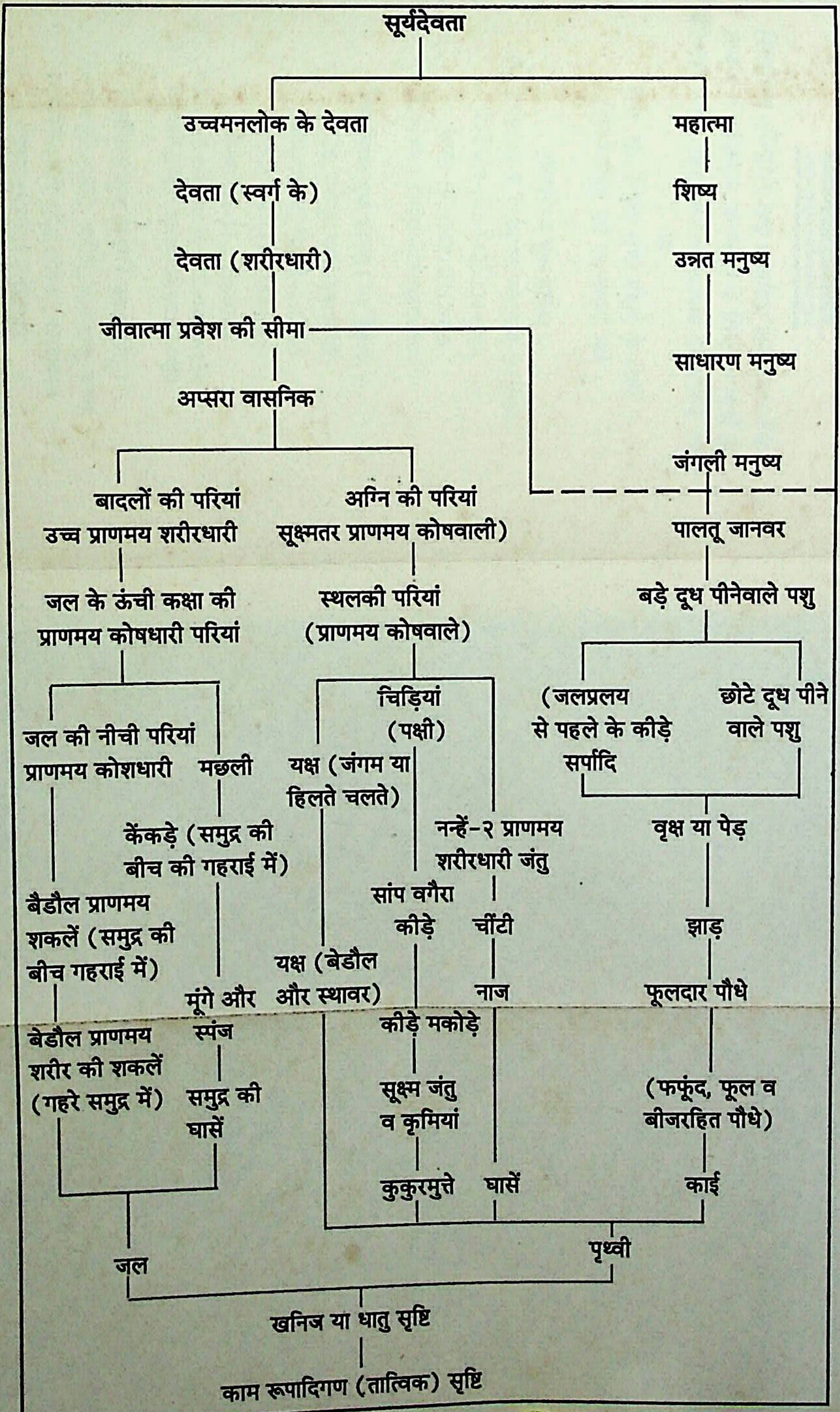

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

www.pilgrimsbooks.com

पिलग्रिम्स पब्लिशिंग तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी के लिये हम लोगों के वेबसाइट www.pilgrimsbooks.com पर अवश्य देखें।

या

डाक द्वारा विषय सूची मंगाने के लिये निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें–

पिलग्रिम्स बुक हाउस

बी० 27/98-ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–221010

टेलीफोन–(91-542) 2314060,

फैक्स–(91-542) 2312456

E-mail-pilgrims@satyam.net.in

पिलग्रिम्स बुक हाउस (नई दिल्ली)

1626, राजगुरु मार्ग, चूना मण्डी

पहाड़गंज, नई दिल्ली–110055

टेलीफोन–91-11-23584015

फैक्स–91-11-23584019

E-mail-pilgrim@del2.vsnl.net.in

E-mail-pilgrimsinde@gmail.com

पिलग्रिम्स बुक हाउस (काठमाण्डू)

पो० बा० नं०–3872, थामेल, काठमाण्डू, नेपाल

टेलीफोन–(977-1) 4700942, 4700919

फैक्स–(977-1) 4700943

E-mail-pilgrims@wlink.com.np

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म क्या है ? मैं कौन तथा क्या हूं ? यह प्रश्न प्रायः सभी व्यक्तियों के चेतन-अचेतन मस्तिष्क में हर-पल गुंजायमान रहता है। प्रत्येक व्यक्ति इस यक्ष प्रश्न का उत्तर अपनी प्रतिभा, अपने अनुभव के अनुसार ढूंढ़ता रहता है तथा एक निश्चित धारणा सुनिश्चित करता है। लेकिन इस पेंचीदे प्रश्न का सर्वमान्य उत्तर निर्धारित करना असंभव तो नहीं, सम्भव भी नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि हर असम्भव प्रश्न का उत्तर सम्भव है।

यहां एक वैज्ञानिक के कथन का उल्लेख आवश्यक है—हाथ ऐंठ ऐंठ कर प्रकृति को अपना रहस्य बताने के लिये बाध्य करना आवश्यक है... और आज अनवरत वैज्ञानिक अनुसंधान के कारण प्रकृति अपना रहस्य बताने के लिये बाध्य है। ब्रह्मविद्या में इसी जटिल प्रश्न के सर्वमान्य उत्तर के निर्धारण का प्रयास किया गया है।

PILGRIMS PUBLISHING
◆ Varanasi ◆
www.pilgrimsbooks.com

Philosophy
Rs. 60

ISBN 81-7769-487-1
9788177694871

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi